मुद्राराक्षस उवाच

हिन्दी जगत के
अनमोल रत्न

संपादक : रोमेल मुद्राराक्षस, ज्योत्सना

अंक 11 – अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर 2021

मुद्राराक्षस उवाच

हिन्दी जगत के अनमोल रत्न

संपादक : रोमेल मुद्राराक्षस, ज्योत्सना मुद्राराक्षस

अंक 11 – अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर 2021

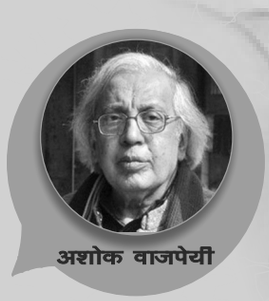

अशोक वाजपेयी

अचला नागर

ममता कालिया

चित्रा मुद्गल

उदभ्रांत

मन्नू भण्डारी

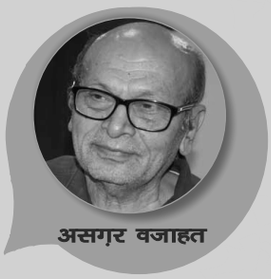

असग़र वजाहत

काशीनाथ सिंह

पिछले 10 अंको के दौरान प्राप्त कुछ महत्वपूर्ण टिप्पणी.....

प्रिय चिरंजीव रोमेल आशीर्वाद

"मुद्राराक्षस उवाच" के अंक प्राप्त हुए, धन्यवाद। अतिकठिन मानसिकता से गुज़रते हुए भी पत्रिका हाथ में फ़ौरन ही उठा ली । पत्रिका की साज सज्जा और सामग्री सभी कुछ मनभावन है, मुद्रा भाई का व्यंग तो आज भी कितना समसामयिक लगता है। पत्रिका पर माह दरमाह निखार आते रहने की हार्दिक शुभकामनाएं । – अचला नागर

काफी तैयारी से अंक आ रहे हैं धीरेंद्र अस्थाना की कहानी बहुत अच्छी लगी। बुआ वाली कविताएँ भी। – ममता कालिया

रोमेल यह तुम बहुत बड़ा काम कर रहे हो मुद्रा जी हमारी स्मृतियों में जीवित हैं बहुत गहरे । पत्रिका को लेकर मेरी हार्दिक शुभकामनाएं। पत्रिका में मुद्रा और इंदिरा की तस्वीरें देख आंखें नम हो आई। फेसबुक पर तुम्हारी प्रतिक्रिया तलछट का सत्य है। – चित्रा मुद्गल

बहुत सुंदर आवरण। हर अंक एक कदम आगे। हार्दिक बधाई और धन्यवाद प्रिय रोमेल – उद्भ्रांत

पत्रिका मिल गयी । बहुत अच्छी लगी । ज्योत्सना जी ने इतना सुंदर लिखा है की मन प्रसन्न हो गया । और तुमने बड़े मन से और बड़े विस्तार के साथ छापा है मेरा साक्षात्कार । तुम दोनो को प्यार और शुक्रिया । – कुम कुम धर

असगर वजाहत की कहानी बहुत अच्छी लगी। व्यंग्य शैली मे लिखी कहानी मन को झकझोर गई। – हरभजन सिंह

मुद्राराक्षस उवाच पत्रिका के मार्च–अप्रैल अंक (2021) में अभी चित्रा मुद्गल जी की कहानी 'प्रेतयोनि' पढ़ी। कहानी हमें अपने अंदर झाँकने पर मजबूर करती है । कहानी की भाषा, शिल्प और प्रवाह शानदार है। एक बेहतरीन कहानी पढ़वाने के लिए मुद्राराक्षस उवाच पत्रिका और संपादक रोमेल मुद्राराक्षस जी का आभार। – आलोक मिश्र ।

स्तरीय कागज––कलम लेखन देखन छवि चित्र––रँचना पारावार अपने समस्त कलेवर मे विविधता सकारात्मकता ऊर्जावान उत्साही मनोवृत्ति को लेकर चल रही एक युवा रोमांटिक और जीवन के प्रति गहन आस्थावादी रोमेल को उनकी बेहतरीन पत्रिका उवाच के लिये ढेरों बधाई और मंगलकामनाये – जया रावत

मुद्राराक्षस उवाच

अंक 11 :अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर 2021

संपादक

रोमेल मुद्राराक्षस
ज्योत्सना मुद्राराक्षस

सलाहकार संपादक
रोमी शीराज़ मुद्राराक्षस

कला/सज्जा सहयोग
अनन्या सिंह

प्रकाशक
रोमेल कन्सेप्ट एण्ड
कम्यूनीकेशन्स प्रा0 लि0
द्वारा
मुद्राराक्षस हिन्दी साहित्य
फाउंडेशन के लिये प्रकाशित

मुद्रक : जैना आफसेट
मूल्य : रू0 50.00
वार्षिक सदस्यता : रू0 400.00
{ डाक व्यय सहित }

विज्ञापन संबंधी जानकारी के लिये कॉल करें
9810590061

संपादकीय पता

2106– सौलीटीयर टावर,
पेरामाउंट सिम्फनी क्रौसिंग रिपब्लिक
गाज़ियाबाद 201009

ईमेल – mudra.uvach@gmail.com

मुद्राराक्षस हिन्दी साहित्य
फाउंडेशन

इस दफा

पृष्ठ सं

संपादकीय..3

कहानी

पीठ———————— ——————————— ममता कालिया 04

नतीजा ——————————————————चित्रा मुद्गल...09

वजूद ————————————————————डा. रंजना जायसवाल..40

चंदा का मंदहास ———————————हरभजन सिंह मेहरोत्रा...23

सबक————————————————————आलोक मिश्र..46

कविता

उद्भ्रांत ....बहुरूपिया...16

कौशल किशोर....................................वहां दुख ही दुख है...39

जया रावत..एक संदेश प्यार का...41

उषा रानी..यह मन बावरा ही तो है...54

विचार

प्रेमचंद से आगे तो निकले हिन्दी ——मुद्राराक्षस..44

पुस्तक समीक्षा

मन बोहेमियन, ले0—राम नगीना मौर्य, समीक्षक — विजय कुमार तिवारी..................................43

क्षणों का आख्यान — ले0 उद्भ्रान्त...52

बाल साहित्य —

चींटीपुरम के भूरे लाल : 'आफत सिंह की आफत़'..55

कला—

रसूलन बाई .....लगत करेजवा में चोट...........ज्योत्सना..61

संपादकीय

रोमेल मुद्राराक्षस ● ज्योत्सना

ऑख मूंद कर बनायी गयी सरकारी नीतियों ने देश के हर क्षेत्र को लुंजपुंज बना दिया । उस पर कोविड की भयानक मार से जैसे हर क्षेत्र ठहर सा गया। इस अप्रत्याशित समय में यदि कोई क्षेत्र समृद्ध होता रहा तो वह था लेखन। अभिव्यक्ति पर जान लेवा प्रतिबन्ध के बावजूद लेखन अपनी बात इंटरनेट के ज़रिये लोगों तक पहुँचाता रहा। इधर कमरों में बंद साहित्यकारों ने अपनी कल्पनाओं की उड़ान को और बुलन्दियों तक पहुँचाया। कहा जा सकता है आने वाला समय इस ऐतिहासिक दौर को करोना काल से जानेगा। इस दौर ने नये नये प्रसंगो को लीक से हटकर कहानियों और कविताओं को एक नया जन्म दिया। सही माने में कोविड काल का दौर साहित्य को एक नयी दिशा दे गया है।

इसी काल में समय के बहाव एवं मांग के अनुरूप रचनाओं में रोचकता और पठनीयता का पुट डालकर पाठकों को हिंदी साहित्य से कसकर जोड़े रखने का सराहनीय कार्य वर्तमान समय के रचनाकारो एवं प्रसिद्ध साहित्यकारों द्वारा निश्वार्थ भाव से किया गया। वास्तव में इन साहित्यकारों को भी 'करोना वारियर' के सम्मान से संजोया जाना चाहिये। जिनमे प्रमुख रूप से अचला नागर, चित्रामुद्गल, ममता कालिया, मन्नू भंडारी, अशोक बाजपेई, उद्भ्रांत, काशी नाथ सिंह, असगर वजाहत, मृदुला गर्ग समेत कई समकालीन साहित्यकार शामिल हैं। इन सभी को वर्तमान समय में पाठकों द्वारा खूब पढ़ा और सराहा जा रहा है। इस काल में नयी पीढी योगदान भी कम नहीं आंका जा सकता। राकेश मिश्र, हरभजन सिंह, आलोक मिश्र, रिफत शाहीन, जैसे कहानीकारों और कवियों ने बेहतरीन साहित्य ही नहीं लिखा बल्कि उसे समृद्व किया। कहना गलत न होगा की हिंदी भाषा को समृद्ध करने की इस मुहिम में लेखनी को हथियार बना सामाजिक विसंगतियों एवं अन्याय के खिलाफ पुरजोर आवाज़ उठा रहे हमारे देष के इन साहित्यकारों द्वारा दिया गया योगदान अनुकरणीय हैं। यही वजह है कि हिंदी भाषा के विघटन के इस दौर में अभी भी हिंदी साहित्य प्रेमियों और पाठकों की एक लंबी फेहरिस्त रचनाकारों की लेखनी को धार देने का हौसला देती हैं। जिसके परिणामस्वरूप तमाम हिंदी साहित्य, समाचार पत्र, पत्रिकाएं भाषाई पक्षपात के बावजूद भी अपना अस्तित्व बनाए रखने में सफल साबित हो पा रहे हैं।

■■ ■■

ममता कालिया

पीठ

ममता कालिया का नाम हिन्दी साहित्य जगत की प्रमुख लेखिकाओं में शुमार है। वे नाटक, उपन्यास, निबन्ध, कविता और पत्रिकारिता अर्थात साहित्य की लगभग सभी विधाओं में हस्तक्षेप रखती हैं। हिन्दी कहानी के परिदृश्य पर उनकी उपस्थित सातवें दशक से निरन्तर बनी हुई है। लगभग आधी सदी के कालखंड में उन्होंने दो सौ से अधिक कहानियों की रचना की है। प्रमुख कहानी संग्रह छुटकारा, एक अदद औरत, सीट नम्बर छः, उसका यौवन, जांच अभी जारी है, प्रतिदिन, मुखौटा, निर्मोही, थियेटर रोड, कौवे, पच्चीस साल की लड़की।

वह आईमैक्स एडलैब्स के विशाल गुंबद छविगृह के परिसर में, 'एडोरा' के शोरूम में, तस्वीर की तरह, एक स्टूल पर बैठी थी। उसके चारों ओर तरह–तरह के विद्युत उपकरण चल–फिर रहे थे, जल–बुझ रहे थे। स्वचालित सीढ़ियाँ और पारदर्शी लिफ्ट को एक बार नजरअंदाज कर भी दिया जाए पर विद्युत झरने पर तो गौर करना ही पड़ा जो अपनी हरी रोशनी से उसे सावन की घटा बना रहा था।

कैफे की कुर्सी पर टिका–टिका हर्ष उसे बड़ी देर तक देखता रहा। उसे लगा, उसके सामने 4 गुणे 6 का कैनवास लगा है जिस पर झुका हुआ वह इस ताम्रसुंदरी का चित्र बना रहा है। पहले वह हुसैन की तरह लंबी, खड़ी, तिरछी बेधड़क रेखाएँ खींचता है, फिर वह रामकुमार की तरह उसमें बारीकियाँ भर रहा है।

लेकिन बारीकियाँ भरने के लिए, अपने मॉडल को नजदीक से जानना होता है। वह कैफे से उठा।

एकदम सीधे उस तक पहुँचने की हिम्मत नहीं हुई।

वह गुंबद परिसर में बेमतलब घूमता रहा।

उसने नरम चमड़े के मूढ़ों पर बैठकर देखा। दूर से ये मूढ़े विशाल गठरी जैसे लग रहे थे लेकिन बैठते ही ये आरामकुर्सी में तब्दील हो गए। ज्यादा महँगे भी नहीं थे। लेकिन यह तय था कि ये जगह बहुत घेरते।

हर्ष को अपना कमरा याद आया जो इतना छोटा था कि वह कभी वहाँ लाइफ–साइज तस्वीर पर खुलकर, फैलकर काम नहीं कर पाया। वह सोचता रहा लड़की के पास जाए या न जाए।

उसे दर्शन की याद आई। दर्शन को कहानियाँ, नाटक लिखने का शौक था। पहले पहल वह विशुद्ध स्वांतः सुखाय लिखा करता था। फिर मित्रः सुखाय लिखने लगा। अब तो बाकायदा बहुजन हिताय बहुजन सुखाय लेखन करता और प्रसार भारती की गोद में खेलता है।

कितना अजीब है कि बी.ए. किए हमें चार बरस बीतें या चालीस, हम उन दिनों के दोस्तों को इतनी भावुकता से याद करते हैं। वे दिन, वे दोस्त, किसी पुरानी फिल्म की तरह, हमारी

आँखों में चलते–फिरते जिंदा होते जाते हैं। उनकी स्मृतियाँ हमें स्पंदित करती रहती हैं। उसी परिसर में थोड़ा आगे, बच्चों के लिए खेल–पार्क था। यहाँ विद्युतचालित पागल गति के खिलौने थे, दुश्मन टैंकों को मार गिराने वाली कड़कड़ाती बंदूकें और गनगनाती मोटरसाइकिलें। इन वीडियो खेलों में गति नहीं, गति का संभ्रम था। बच्चों के मनोरंजन में कौतुक, विस्मय, सौंदर्य, संगीत के लिए कोई स्पेस नहीं था। भारी बक्सों में विकृत आवाजें और दृश्य भरे हुए थे। बच्चों के मूढ़ माँ–बाप उन्हें इन खेलों में व्यस्त कर गर्व और आनंद से मुस्करा रहे थे।

स्वचालित सीढ़ियों के नीचे फव्वारा था और छोटा–सा तालाब। तालाब के ठीक सामने वह स्टॉल था जिसके स्टूल पर वह लड़की बैठी थी, निश्चल।

हर्ष को अफसोस हुआ कि वह अपनी स्केचबुक साथ नहीं लाया। 'एडोरा' में बिजली से चलने वाले घरेलू उपकरणों की प्रदर्शनी लगी थी। स्टॉल में दो लड़के दाईं और बाईं ओर खड़े थे।

हर्ष बेमतलब महारानी मिक्सी का वह कागज पढ़ने लगा जिसमें संजीव कपूर हँसते हुए न्योत रहा था, 'खाना खजाना की शान, महारानी मिक्सी से पिसी दालें और मसाले।'

उसके हाथ में कागज देखते ही ताम्रसुंदरी हरकत में आई। स्टूल से उतर वह मिक्सी काउंटर पर पहुँची। उसने अपनी बड़ी–बड़ी आँखे उठाकर हर्ष को देखा और बोली, 'यह हमारा सबसे अच्छा उत्पाद है। इसमें कड़ी से कड़ी चीज भी मिनटों में पिस जाती है। मैं आपको हल्दी पीसकर दिखाऊँ!'

'नहीं, नहीं,' हर्ष कहना चाहता था पर तब तक लड़की ने हल्दी की गाँठें डाल कर मिक्सी चला दी। हाथ के इशारे से हर्ष ने उसे रोका। उसे बताया कि नून, तेल, हल्दी की उसके जीवन में, फिलहाल, कोई जगह नहीं। लड़की कपड़े धोने का उपकरण दिखाने लगी।

'देखिए, यह सामने से खुलने वाली मशीन है। इसमें कपड़े ऐसे धुलते हैं', उसने हाथों से मूक अभिनय किया।

हर्ष को हँसी आ गई। क्या यह लड़की उसे अपना संभावित ग्राहक समझती है। वह तो गुणग्राहक की भूमिका में आया है। उसने कहा, 'जब कपड़े मैले हो जाते हैं, मैं नए खरीद लेता हूँ।'
'क्या आप इतने अमीर हैं?' लड़की की आँखें कुछ फैल गई।
'नहीं, मैं इतना आलसी हूँ।'
लड़की ने एक क्षण दिलचस्पी से हर्ष को देखा, फिर वह वापस स्टूल की तरफ जाने लगी।

हर्ष को लगा उसे तत्काल कुछ करना होगा। वह यकायक बोल पड़ा, 'क्या आप मेरे साथ कॉफी पीना पसंद करेंगी, यहीं सामने।'

उसकी आशा के विपरीत लड़की ने कहा, 'हाँ प्लीज, मैं बहुत ऊब रही हूँ।'
'यहाँ की बिक्री ?' हर्ष ने पूछा।
'बिक्री करना मेरा काम नहीं है। मैं सामान का प्रदर्शन करती हूँ। बिक्री वाले लड़के यहाँ खड़े हैं,' उसने दोनों लड़कों की तरफ इशारा किया।

लड़की ने अपना पर्स स्टूल से उठाया। लड़कों से कहा, 'दस मिनट के लिए जाती हूँ, ठीक है।'

लड़कों ने गर्दन हिला दी।
हर्ष को लगा, लड़की खुली किताब है। पहली मुलाकात में सब कुछ बता दिया। नाम – इंदुजा, शिक्षा – बी.एससी., काम – प्रत्यक्ष प्रचार।

'अर्थात मॉडलिंग!' हर्ष ने कहा।
'बिल्कुल नहीं। मैं मटक–मटक कर रैंप पर कैटवॉक कभी न करूँ,' लड़की को मॉडल शब्द से परहेज था।
'हम कलाकारों की दुनिया में मॉडल इतना खराब शब्द नहीं समझा जाता। हमारे लिए तो सारी सृष्टि ही मॉडल है।'
'सिर्फ भू–दृश्यों के लिए। आजकल कौन बताता है भू–दृश्य। आपकी दुनिया में मॉडल का मतलब आज भी सजीव, नग्न आकृति है। आपके यहाँ मॉडल और नग्नता पर्यायवाची शब्द हैं।'

हर्ष ने लड़की को जैसे समझा, उससे वह कहीं ज्यादा सचेत निकली। उसने कहा, 'आपके दस मिनट हो गए हैं। आप फिर कभी मिलें तो मैं आपको बताऊँ कि पेंटिंग की खूबसूरती और खुसूसियत क्या हैं।'
इंदुजा ने कहा, 'ठीक है हर्ष।'
हर्ष चौंका, 'आप मेरा नाम जानती हैं?'
हाँ, जहाँगीर आर्ट गैलरी में आप अपनी एकल प्रदर्शनी में अलग और अकेले खड़े थे। तब मैंने आपकी तस्वीरें देखी थीं।'
हर्ष बहुत खुश हो गया।
'देखता हूँ, विज्ञान की पढ़ाई ने कला के दरवाजे आपके लिए बंद नहीं किए।'
'दरवाजे तो सिर्फ रोजगार के बंद पड़े हैं।'
'मगर यह काम जो कर रही हैं?'
'यह तो दस दिन का काम है। पाँच हजार का अनुबंध है। पाँच सौ रुपए रोज, उसके बाद छुट्टी।'
'फिर क्या करेंगी?'
'किसी और चीज का प्रचार करूँगी। प्रस्ताव आते रहते हैं।'
'कल आएँगी?'
'बताया न दस दिन का कैंप हैं। आज तो दूसरा ही दिन है।'
जानकारी छोटी थी पर हर्ष को बड़ी लगी। इतनी बड़ी कि उसे दर्शन को बताने की जल्दी हो गई।

दर्शन घर पर अगली स्क्रिप्ट पर काम कर रहा था। हर्ष का तरोताजा, क्लीन शेव्ड चेहरा देखकर बोला, 'लाइन मारने जा रहे हो या लाइन मारकर आ रहे हो?'
हर्ष ने भवें सिकोड़ीं, 'हर हफ्ते सड़ियल सीरियल लिखते–लिखते तुम्हारी भाषा बर्बाद हो रही है। लाइन मारना क्या होता है बोलो?'

दर्शन सकपका गया। जब से वह हफ्तावार लेखन करने लगा था, पैसा तो उसके ऊपर बरस रहा था पर उसके आत्मविश्वास में कमी आई थी। हालाँकि उसकी निरीक्षण–क्षमता और विसंगति–बोध पहले से तेज हुआ था, उसे हमेशा लगता कि कल कोई बेहतर लिक्खाड़ आकर उसके साम्राज्य पर कब्जा जमा लेगा।

हर्ष अपने क्षेत्र का फ्री लांसर था। पेंटिंग में उस पर न कोई नियम थोपे जा सकते थे, न शर्तें। अब तक उसे नौकरी में बाँधने के समस्त प्रयास विफल सिद्ध हुए थे। एक बार मुंबई शिपिंग कॉरपोरेशन की कलाप्रेमी मालकिन ने बड़े इसरार से उसे अपने सुसज्जित बँगले में एक कमरा देकर कहा था, 'हर्ष जी मैं चाहती हूँ आप मेरे घर को एकदम शांतिनिकेतन बना दें। इसकी हर दीवार पर आकर हस्ताक्षर सहित चित्र सजे।'
उसने चित्रकार के लिए नई–नकोर कैनवस, तूलिका और रंग मँगा दिए।
हर्ष तीसरे ही दिन वहाँ से भाग आया, अधूरी तस्वीर वहीं छोड़कर। साथी कलाकारों ने पूछा, 'क्या हुआ यार? मालकिन ने तुम्हारी ईगो से छेड़छाड़ कर दी क्या?'
हर्ष ने सिगरेट का टोटा जमीन पर रगड़कर बुझाते हुए कहा, 'नहीं यार,

पर इतने चिकने वैभव में पेंटिंग तो क्या मुझसे पॉटी भी नहीं उतरती। वह मेरी दुनिया नहीं। दो रातों से सो ही नहीं पाया।'

इरफान उसे जानता था। उसने कहा, 'तुम्हें नींद तभी आती है, जब पंद्रह बीस मिनट अपने कमरे का झड़ता पलस्तर टकटकी लगाकर देखते रहो।'

'कसम से मुझे अपना कमरा बड़ा याद आया।'

ऐसे बेढब आदमी से बड़े ढब से बात करनी होती है, दर्शन को इसका अहसास था।

'सॉरी यार, मामला गंभीर है क्या?'

अगले दिन दर्शन को ताम्रसुंदरी दिखाई गई। तय हुआ हर्ष आगे बढ़े। महीने भर हर्ष ने बहुत काम किया। दो तस्वीरें पूरी और एक अधूरी बनाईं। दोनों तस्वीरों के ग्राहक भी फौरन मिल गए। वह रोज आईमैक्स गुंबद छविगृह जाता रहा और बाद में दादर स्टेशन पर मँडराता रहा क्योंकि इंदुजा दादर में रहती थी। जल्द उसने दोस्तों को खबर दी कि वह इंदुजा से शादी करेगा।

इंदुजा शायद इतनी जल्दबाजी पसंद न करती पर उसके घर वाले उसकी शादी के बारे में सोचना बंद कर चुके थे। वे उससे छोटी लड़की की सगाई कर चुके थे और अब लड़के की शादी की तैयारी में थे। वे इंदुजा को समझाते, 'तुम इतना कमाओ कि तुम्हें शादी–ब्याह की परवाह ही न रहे। पाँच सौ रुपए रोज में जो मर्जी करो। शादी में सौ झंझट हैं।'

इन बातों से इंदुजा भड़की हुई थी। फिर हर्ष जैसा सुदर्शन विकल्प जो मिल रहा था।

दर्शन ने पग–पग पर इन प्रेमियों का साथ दिया। वह अपनी छोटी–सी कार, बड़े से फ्लाइओवर के नीचे मामा लांड्री के पास पार्क कर, दादर में दिन भर इंतजार करता रहा कि कब इंदुजा घर से भाग कर आए और वह उसे गंतव्य तक पहुँचाए। अदालत से विवाह प्रमाणित हो जाने के बाद दर्शन ने ही इंदुजा के घर तार किया। वकील की सलाह के मुताबिक दर्शन इंदुजा के घर पर भी स्वयं सूचना देने गया कि उसकी शादी हो गई।

अगले कुछ महीने दोस्तों ने हर्ष का नाम हर्षातिरेक रख दिया। उसका सारा ढब ही बदल गया। अब उसके घर वक्त–बेवक्त बियर–बैठकी नहीं हो सकती थी। दोस्तों के घर उसके चक्कर कम हो गए। कला–वीथियों में कभी सब टकरा जाते। हर्ष कहता वह जल्दी उनकी गप्प–गोष्ठी में शामिल होगा पर आजकल एक पीस पर काम चल रहा है।

'मास्टरपीस!' दर्शन पूछता।

'यह तुम्हारे हिंदी लेखन की दुनिया नहीं जिसमें जो भी, जब भी लिखा जाता है, मास्टरपीस ही होता है।' हर्ष हँसता। लेकिन मन ही मन उसे अहसास होता कि दोस्त बहुत गलत भी नहीं कह रहे। जिस पीस पर वह काम कर रहा था, वह उसके लिए खास मायने रखता था। इस तस्वीर की शुरुआत में एक इतिहास था।

इंदुजा की तांबई रूप–राशि का ऐश्वर्य उसे दिन पर दिन रससिक्त करता जा रहा था। इंदुजा को भी हर्ष के संग एक–मन एक–प्राण की अनुभूति बनी हुई थी। गर्मियों की एक रात उमस से घबराकर इंदुजा ने एकदम महीन मलमल का कुर्ता पहन लिया, बिना अंतःवस्त्रों के। षटकोणीय लैंपशेड की आड़ी–तिरछी किरणें उसकी पीठ को जगमगा गईं। उसकी तांबई त्वचा पर सुनहरी प्रकाश–रश्मियाँ खो खो खेल रही थीं। उस वक्त हर्ष की उपस्थिति और अपनी देह की अवस्थिति से निसंग वह कुर्ते का आगे का हिस्सा उठाकर अपने को हवा कर रही थी।

नहीं, हर्ष तुरंत कागज पेंसिल लेकर नहीं आया। उस क्षण तो वह तपे हुए तांबे का स्लोप निहारता रहा। उस स्लोप में मेरूदंड की दो–तीन हड्डियाँ उभरी हुई थीं, जैसे दो–तीन पड़ाव।

इंदुजा ने घूम कर हर्ष को देखा। जैसे उसे पता चल गया कि हर्ष क्या सोच रहा है। उसने कुर्ता नीचे किया और कहा, 'इस बार कूलर जरूर लगवा लो। कमरा भट्टी की तरह तप रहा है।'

'मैं भी।'

'लेकिन मैं नहीं। मैं नहाने जा रही हूँ।'

इंदुजा कमरे से चली गई पर उसकी छवि हर्ष की आँखों में समा गई। बगल के अधकमरे में उसने स्टूडियो बना रखा था। वहाँ बेतरतीब कागज, हार्डबोर्ड, रंग, ब्रश पड़े रहते। थिनर की गंध हमेशा इस कमरे में कैद रहती। यहाँ बिछी दरी में भी तरह–तरह के रंगों के निशान पड़े थे। एक कोने में मेज पर चारकोल के टुकड़े, प्लास्टर ऑफ पेरिस की छोटी थैली और रंग–पुती शीशी में पानी रखा था।

आधार चित्र बनाने में हर्ष को देर नहीं लगी।

रंग और रेखाओं के विवरण में बहुत सावधानी बरतनी थी।

हर्ष रात भर चित्र में लगा रहा।

इंदुजा एक बार आकर देख गई।

आधी रात जब उसकी नींद खुली, वह फिर स्टुडियो में आई।

अब तक चित्र स्पष्ट हो गया था।

उसने ऐतराज किया, 'देखो, तुम्हें पता है, मुझे मॉडलिंग से चिढ़ है। तुमने मेरा चित्र क्यों बनाया?'

'इंदु इस पीस में मेरे सत्ताईस सालों के संस्मरण हैं।'

हर्ष ने कई सैशन में चित्र में कुछ परिवर्तन किए। स्मरण–शक्ति ने उसका साथ दिया। अब यह पीठ अकेली इंदुजा की नहीं थी, इसमें कई पीठों की स्मृतियाँ आ मिली थीं। इस पीठ में माधुरी दीक्षित की पीठ थी, स्मिता पाटील की पीठ थी, यह पीठ कमनीय से अधिक कोमल थी, कोमल से अधिक कृश थी। इसमें निराला की क्लासिक कविता 'वह तोड़ती पत्थर' वाली मजदूरनी की भी पीठ थी। यह कई–कई सुधियों की पीठ थी। पूरे कैनवस पर अकेली, लंबी, साँवली आकृति थी जो उत्तान भी थी और ढलान भी।

यह तस्वीर एक साकार स्वप्न की तरह बनी। जिस दिन राष्ट्रीय कला–वीथि में अन्य चित्रों के साथ इसे प्रस्तुत किया गया, बाकी चित्र जैसे अनुपस्थित हो गए। स्वयं उसके साथी कलाकार हर्ष की सराहना किए बगैर न रह सके। कला समीक्षकों ने अखबारों में हर्ष की चित्रकला में अमृता शेरगिल से लेकर जतिन दास तक से आगे की संभावनाएँ ढूँढ़ी। और तो और कला–वीथि के बाहर 'पीठ' चित्र के फोटो प्रिंट बिकने लगे।

शहर के सबसे अमीर उद्योगपति ने कई लाख में चित्र खरीद लिया। दोस्तों ने दावत माँगी।

'सूर्या' में पार्टी रखी गई। इस शाम के लिए इंदुजा ने सलमे जड़ी काली ड्रेस चुनी और हर्ष ने क्रीम कलर का कुर्ता सेट। पार्टी में सबकुछ बेहतरीन रहा।

रुखसत होते रात का एक बज गया। नवरोज, इरफान, दर्शन ने बड़ी मुबारकें दीं। तभी दर्शन ने कहा, 'हर्ष इस मास्टरपीस का श्रेय तुम्हें नहीं, तुम्हारी मॉडल को जाता है।'

'मैंने मॉडल कहाँ इस्तेमाल किया?' हर्ष ने विस्मय दिखाया।

'हम भी समझते हैं दोस्त। यह इंदुजा की पीठ है, शत–प्रतिशत।'

मुझे तो पता भी नहीं, बाय गॉड, इंदुजा ने आश्चर्य दिखाया।

'तुम उधर के मेहमानों पर ध्यान दो,' हर्ष ने इशारे से इंदुजा को हॉल के दूसरे कोने में भेज दिया।

घर लौटकर इंदुजा ने कपड़े बदलते हुए कहा, 'आज अपनी सहेलियों से मिलकर बड़ा अच्छा लगा। ये सब मेरे साथ मीडिया पब्लिसिटी में थीं। सोचती हूँ, मैं भी फिर काम शुरू कर दूँ। घर में बोर होती रहती हूँ।'

'नहीं,' हर्ष ने कुछ कठोरता से कहा, 'तुम कहीं नहीं जाओगी।'

इंदुजा ने शरारत से कहा, 'प्यार–मुहब्बत में सात लीवर का ताला नहीं लगाया जाता हर्ष। मैं तो वह प्रत्यक्ष प्रदर्शन वाला काम बड़ा मिस करती हूँ।'

हर्ष ने उसे पकड़कर झिंझोड़ दिया, 'तुम्हें प्रदर्शन का चस्का लगा है। बताओ दर्शन से तुम्हारा क्या रिश्ता है? उसने कैसे जाना यह तुम्हारी पीठ की तस्वीर है।'

'पागल हो, मैं क्या जानूँ। दर्शन तुम्हारा दोस्त है। मैं क्या तुम्हारे दोस्त को पीठ दिखाती फिरती हूँ?'

'हो सकता है उसने तुम्हें नहाते देख लिया हो, लापरवाह तो तुम हो ही।'

'हर्ष तुम मनोरोगी की तरह बोल रहे हो। बाथरूम में दरवाजा नहीं है पर पर्दा तो है न। और सारे दिन तो तुम घर पर ही होते हो।'

हर्ष पर कोई तर्क का असर न कर सका। वह विषादग्रस्त हो गया। सफलता के बावजूद वह गुमसुम रहने लगा। लोग इस मौन को उसकी संवेदना और गरिमा से जोड़ रहे थे। आए दिन पत्रकार उसका साक्षात्कार लेने आते। वह अपनी अन्य सभी तस्वीरों पर बोलता लेकिन पुरस्कृत तस्वीर 'पीठ' पर चुप लगा जाता। उसे लगता मीडिया उसका जीवन उघाड़ने का षड्यंत्र रच रहा है।

■■■■

चित्रा मुद्गल

नतीजा

आधुनिक हिन्दी कथा–साहित्य की बहुचर्चित लेखिका चित्रा मुद्गल सर्वाधिक पठनीय लेखकों में से एक हैं। उनके लेखन में समूचा एक दौर दिखता है। उनके अब तक के लगभग तेरह कहानी संग्रह, तीन बाल उपन्यास, चार बाल कथा संग्रह, पांच संपादित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

10 दिसम्बर 1944 को जन्मी चित्रा मुद्गल की प्रारंभिक शिक्षा पैतृक ग्राम निहाली खेड़ा (जिला उन्नाव, उ.प्र.) से लगे ग्राम भरतीपुर के कन्या पाठशाला में हुई। हायर सेकेंडरी पूना बोर्ड से की और शेष पढ़ाई मुंबई विश्वविद्यालय से हुई।

पुरबी दी के सामने उद्विग्न भाव से रूमा ने 'होम' की बच्चियों की छमाही परीक्षा के कार्ड सरका दिए। नतीजे पहली कक्षा के थे। 'होम' में कुल सत्ताईस बच्चियाँ थीं, जिन्हें लगातार डेढ़–दो वर्षों के माथाफोड़ परिश्रम के उपरांत नगरपालिका के स्कूल में दाखिल कराया जा सका था।

सबसे पहला कार्ड पुरबी दी ने पियासी का खोला। नम्बरों पर घूमती नज़र के साथ ही उनके दिपदिपाए चेहरे पर विषाद अचानक सँवलाई बदलियों–सा गहरा आया – "पियासी में जरा भी सुधार नहीं आया, बाकियों का क्या हाल है?"

"बहुत बुरा। प्रिंसिपल ने बुलवाया था। वहीं से आ रही हूँ।"

दूसरे कार्ड पर अंकित शून्यों से गुज़रते हुए पुरबी दी ने पल–भर को कार्ड पर से आँखों को अलग कर चिंतित भाव से रूमा की ओर देखा। – "क्या कहा?"

'चिड़चिड़ा रही थीं। दाखिल क्यों कराया है आपने इन बच्चियों को, जो पढ़कर देने को राजी नहीं!"

"पिछली बार महीने के टेस्ट में बिजली ने काफी कुछ ठीक किया था। इस बार उससे पहले से बेहतर की उम्मीद थी..." रूमा ने वाक्य पूरा नहीं किया।

"फिर?" पुरबी दी की आँखें दूसरे कार्ड पर लिखी क्लास टीचर की निराशाजनक तीखी टिप्पणी से किरकिरा आई। "दी, खुद ही देख लें"

पुरबी दी ने आगे प्रति प्रश्न नहीं किया। नतीजे का अंतिम कार्ड बड़ी–बड़ी आँखों वाली सलोनी बच्ची शिवानी का आया उनके सामने सभी विषयों के सामने तीखी चोंच खोले सतर्क गिद्ध से शून्य के गोले से बैठे हुए नजर आए क्या होगा शिवानी का? सोना गाछी की एक अँधेरी, सड़ांध–भरी कोठरी में उसकी माँ 'एड्स' की चपेट में है। माँ की लाख मिन्नतों के बावजूद उन्होंने माह में एक बार बेटी को देख लेने की उसकी ललक को निष्ठुरता से ठुकरा दिया था। अस्पताल में भर्ती हो जाए, इलाज कोई चमत्कार दिखलाए, तभी वे शिवानी को उसे निकट से नहीं, दूर से दिखा सकेंगी। ऐसे ही उसे सब्र करना सीखना होगा।

माँ की याद में रह–रह हुड़कने वाली शिवानी ने माँ से मिलने को कम हठ नहीं किए।

एक दफे तो वह चौकीदार की आँख में धूल झोंके गेट से बाहर होने में सफल हो गई। गनीमत हुई कि होम की ओर आती हुई रूमा की नजर उस पर पड़ गई। छह वर्ष की नन्ही बच्ची का साहस देख सभी स्तब्ध रह गए। तीन दिन तक पुरबी दी शिवानी को गैरेया–सी सीने से चिपकाए उसकी सुबकियों के मोती आँचल में चुनती रहीं। समझाती रहीं। अब 'होम' ही उसका घर है– अन्य बच्चियाँ उसकी बहनें। नतीजों को मेज के एक ओर सरका वे अपनी कुरसी की पिछाड़ी पर शिथिल सी टिक गई। नतीजों के शून्य उनकी आँखों में उतर आए। सवाल कुतरने लगे। एक भी बच्ची उत्तीर्ण नहीं हुई। अधिकांश ने सभी विषयों में शून्य ही अर्जित किया है। ऐसा नहीं कि स्कूल में दाखिले से पूर्व उनकी प्रारंभिक तैयारी नहीं करवाई गई। डेढ़ वर्ष से रूमा निरंतर उन्हें पढ़ा रही है। अब भी दो–अढ़ाई घंटे पढ़ाती है। स्कूल में दिए गए होम वर्क करवाती है। आगे के पाठों की पहले से ही तैयारी करवाती है ताकि स्कूल में पढ़ाए जाने पर उन्हें दिक्कत न हो। बच्चियाँ अक्षरों को पहचान सकें, शब्दों को उच्चार सकें।

रूमा ने उन्हें बाहर खींचा, "आपके नाम प्रिंसिपल साहब ने खत भेजा है, पढ़ लें, दी।"

"ओ हाँ!"

पुरबी दी ने अनमनसकता को झटक पत्र खोल लिया। पत्र क्या था, जहरीली शिकायतों का पुलिंदा। हर वाक्य चाबुक की शक्ल में उन पर बरसने लगा कि उन्हें नहीं लगता कि ये बच्चियाँ तीन साल में भी पहली कक्षा पार कर पाएँगी। अजीबोगरीब हरकतें करती रहती हैं। प्रत्येक कक्षा में उन्हें पाँच–छह दफे पेशाब लगती है। छुट्टी न दी जाए तो जहाँ बैठी हैं वहीं मूत लेती हैं। छुट्टी देने पर पाखाने से कक्षा में नहीं पलटतीं। पेड़ों के नीचे फुगड़ी खेलती नजर आती हैं या कंकरियाँ बटोर गिटकें खेलने बैठ जाती हैं। क्यारियों के फूल इनके चलते टहनियों पर नहीं खिल सकते। पानी के नल खुले छोड़ देंगी या अँजुरी में पानी भर एक–दूसरे को छीपेंगी। सवाल के जवाब में गूँगी–बहरी–सी हो टुकर–टुकर ताकती खड़ी रहेंगी। न स्लेट पर कुछ लिखेंगी, न कॉपी में। डाँटने पर जंगलियों की भाँति रो–चीख पूरे स्कूल को सिर पर उठा लेंगी और अन्य बच्चियों की पढ़ाई में बाधा डालेंगी। परले दरजे की उद्दंड जिद्दन हैं। इनकी कॉपियों में टीचरों को होमवर्क स्वयं लिखने पड़ते हैं। मुश्किल यह है, इनकी देखा–देखी शेष बच्चों में भी अनुशासनहीनता पनप रही है। कृपया ध्यान दें। दूसरे बच्चों की शिकायत है कि ये उनकी चाक, पैन्सिलें, रबड़ें चुरा लेती हैं। हालाँकि टीचरों को सख्त आदेश है कि वे अन्य बच्चों के मुकाबले उनसे कोई भेदभाव न बरतें। न उन्हें हेय दृष्टि से देखें, न बेवजह प्रताड़ित करें। प्रश्न यह है कि अकेली टीचर केवल इन्हीं बच्चियों के आगे–पीछे नहीं दौड़ सकती। पूरी कक्षा की जिम्मेदारी उनके ऊपर है। यह सब कहने का अर्थ यह नहीं है कि हम यह मानकर चल रहे हैं कि ये बच्चियाँ असामान्य बच्चियाँ हैं। इतना जरूर मानकर चल रहे हैं कि ये बच्चियाँ अन्य बच्चियों के परिप्रेक्ष्य में भिन्न परिवेश की उपज हैं। इन बच्चियों की मानसिकता में परिवर्तन लाने की जिम्मेवारी आपकी है। कृपया इस दिशा में विशेष परिश्रम करें। मात्र उन्हें उस परिवेश से मुक्त करा समाज के सामान्य वर्गों के बीच ला खड़ा कर देने भर से ही कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती।

मेरी बातों को अन्यथा न लें। किसी रोज आकर मिलें, या मुझे 'होम' बुला लें। यकीन मानिए, मैं हर तरह से सहयोग की आकांक्षी हूँ। आपके क्रांतिकारी उद्देश्यों में मेरी गहरी रुचि है। मगर मैं यह भी नहीं भूल पाती कि मैं नगरपालिका के एक बहुत बड़े स्कूल की प्रधानाचार्या हूँ। विद्यार्थियों में अनुशासन बनाए रखना मेरा प्रथम कर्तव्य है...। पत्र लिफाफे में सरका पुरबी दी ने एक दीर्घ निश्वास भरा

"होम चलते हैं। तुरंत एक मीटिंग रखते हैं।"

पुरबी दी का आशय भाँप रूमा ने दबी जुबान में प्रतिवाद किया, "कल रख लेते हैं दी, बाकी सब तो होंगी.....बरुआ दी से भेंट शायद न हो पाए।"

"पुरबी दी की भौंहें चढ़ीं, क्यों?"

"सुबह बता रही थीं कि रवींद्र भवन में उनके नए नाटक की स्टेज रिहर्सल होने वाली है। साढ़े चार के आसपास। तीन बज रहे हैं।"

"नाटकों में उनकी दिलचस्पी इधर कुछ ज्यादा ही बढ़ गई है। बच्चियों की कॉउंसलिंग में मन नहीं लग रहा लगता।"

"बात ये नहीं..."

"प्रिंसिपल ने बच्चियों की उद्दंडताओं का जो ब्योरा लिख भेजा है, उस रामायण से तो यही लग रहा है....जितना समय उन्हें दिया जाना चाहिए, नहीं दिया जा रहा।"

"समय और तवज्जों में कोई कटौती नहीं बरुआ दी की ओर से हाँ, दिक्कतें हैं उनकी। बड़े दिनों से शायद उनसे आपकी कोई बातचीत नहीं हुई।"

"नौकरी कोई है नहीं उनकी पेंशन मिलती है नाम मात्र की। उससे तो ट्राम से 'होम' आने–जाने का किराया तक नहीं निकल पाता उनका।"

"नाटकों में काम किए बिना..." रूमा बरुआ दी की पैरवी में सन्नद्ध हुई।

"क्यों... बेटी मदद नहीं करती?"

"करती थी।"

"थी, यानी?"

"जगदलपुर, मध्य प्रदेश में है वह आजकल।"

"तबादला हो गया?"

"नहीं। नौकरी छोड़ किसी अनवर नाम के युवक के संग ब्याह रचा घर–बार बसा लिया उसने। माँ की फिक्र छोड़ दी है।"
पुरबी दी क्षणांश मौन हो आई। गलत नहीं है, रूमा! मीडिया, संगठनों, संगोष्ठियों, दानदाताओं के मतलब बेमतलब उलझावों से घिरी हुई वे इधर 'होम' की अपनी सहयोगिनों से लगभग कट–सी गई हैं। आपसी संवाद मात्र निर्देशों और आदेशों तक सिमट–सिकुड़ रह गया है।

"चलें! औरों से मिलते हैं!"

रूमा ने लक्ष्य किया। सदैव तनी रहने वाली पुरबी दी की देह, चाबी कम हो रही गुड़िया–सी उठते हुए डगडगाई।

'होम' में आज किसी की खैर नहीं। न केतकी दी की, न सुतपा की, न मालिनी की.. बच जाएँगी केवल बरुआ दी। पेशी उनकी भी कल जरूर होगी। मगर तब तक भीतर व्यापी तरेड़ की तीव्रता निश्चित ही कुछ सुस्थिर हो चुकी होगी। अबोध बच्चियों की मानसिकता में दबे जड़े कुसंस्कारों को धोने–पोंछने की महती जिम्मेवारी एकमात्र बरुआ दी की है। प्रिंसिपल का पत्र चिपकाया हुआ नहीं था। पुरबी दी के सामने रखने से पूर्व वह उसे पढ़ चुकी थी। अनुशासन बनाए रखने के नाम पर प्रिंसिपल बच्चियों को किसी भी बहाने स्कूल से बाहर कर सकती हैं। दाखिले के समय कम तेवर नहीं दिखाए उन्होंने पुरबी दी का ही जिगरा था कि कानून और सरकार दोनों को नंगा कर कटघरे में ला पटका उन्होंने, लिखित आदेशों के समक्ष झुकना लाचारी थी प्रिंसिपल की। पुरबी दी का हठ था। बच्चियाँ सामान्य स्कूलों में सामान्य बच्चों के बीच उनके साथ ही पढ़ेंगी...। रह–रह कर प्रश्न खूंद रहा। ऐसा कैसे हो सकता है कि उनकी एक भी बच्ची सवालों के जवाब न दे पाई हो! आधा–अधूरा कुछ तो प्रयत्न किया ही होगा किसी ने!

प्रिंसिपल के खत में विनय के बावजूद पूर्वाग्रह अपना मुँह नहीं छिपा पा

रहा था। दोष उनका नहीं। उनके पास व्यवस्था और अनुशासन की अभेद भित्ति है, जिसकी आड़ में वे जब चाहें अपनी शिक्षिकाओं की अक्षमता और लापरवाही उनके मत्थे से अलग कर औरों के सिर मढ़ दें! उनकी मासूम बच्चियों के लिए तो यह काम और भी आसान है..। रही शिक्षकों की बात तो उनकी जिंदगी का उद्देश्य महीने की शुरुआत में तनखाह का लिफाफा हासिल करना भर मात्र रह गया है।...

मीटिंग में काफी खुलकर बातचीत हुई थी। अकेली वे ही क्षुब्ध नहीं थीं। पढ़ाई में बच्चियों की घोर अरुचि और नतीजों को लेकर सभी सहयोगिनों के मन में दुःख और तनाव का वितान तना हुआ था। उन बच्चियों की तई विशेष जिन्हें वय के मुताबिक दूसरी या तीसरी कक्षा की छात्राएँ होना चाहिए था। प्रिंसिपल की चिट्ठी सुनकर तो सभी के दिल और बैठ गए। उन्होंने सख्त स्वर में सभी को फटकारा। सभी निष्ठभाव से अपने–अपने काम में संलग्न हैं तो उस श्रम का परिणाम नजर क्यों नहीं आ रहा? वे तो लगातार इस कोशिश में रही हैं, और हैं कि 'होम' में कलकत्ते के कोने–कोने से वे बच्चियाँ रहने पढ़ने आएँ, जिन्हें माँ की मजबूरी तले अपना बचपन घोंटना पड़ रहा है। स्वस्थ परिवेश और स्वस्थ वातावरण में वे पल–पुस सकें। भविष्य बना सकें।

केतकी दी की आँखें गीली हो आई फटकार की अवमानना से नहीं, प्रयत्नों की निष्फलता अनायास घुमड़ आई। 'होम' की देखरेख की पूरी जिम्मेवारी उनके जिम्मे है। दिन–रात वह बच्चियों के संग रहती हैं। उन्हें क्या खाना है, क्या पहनना है, कब नहाना है, किसे नहीं नहलाना है, किसे दूध पिलाना है सोने से पूर्व, किसे नहीं देना है। खाँसी सर्दी के चलते सबके प्रति सतत चौकन्नी दृष्टि रखनी पड़ती है उन्हें। बच्चियाँ उन्हें 'दीदी' माँ कहकर पुकारती हैं। पुरबी दी ने ही सिखलाया है उन्हें ।

विधवा होने के ठीक तीसरे वर्ष बच्चों से नाता तोड़ केतकी दी 'होम' को समर्पित हो गई थीं। चारों बहुओं की चाकरी करने की बनिस्बत उन्होंने शेष जीवन मथुरा, वृंदावन में गुजारने के बजाय जीवन को उद्देश्यपूर्ण बनाने का निश्चय किया। उनके विरक्त ऊबे तन–मन को प्रेरित करने का श्रेय पूर्णरूपेण पुरबी दी को ही जाता है। उन्होंने ही समझाया था अपना घर–संसार वे भोग चुकीं। बहू–बेटों को अपना घर संसार अपनी लाग लगन के संग भोगने दें। वे आएँ और उन लोगों से जुड़ें जिनको उनकी जरूरत है। देह व्यापार के नरक में पड़ी सड़ रही निर्वासित दुर्गाओं की बच्चियों को पालें। देवी माँ की सेवा में मोहपाश खोलें। असली भक्ति करें..।

पुरबी दी सोदाहरण खड़ी थीं उनके सामने दिवंगत पति के मित्र साहा साहब की ही तो इकलौती बेटी थीं पुरबी दी! पूरबी दीदी ने न घर –संसार बसाया, न केतकी दी ने उन्हें कभी ब्याह न करने और स्वयं का घर – परिवार न रचने–गढ़ने पर बिलखते–संतप्त होते ही पाया। बस, एक ही धुन उनके सिर रात–दिन चढ़ी दिखी। देह व्यापार में लिप्त मजबूर स्त्रियों की संतानों को, विशेष रूप से लड़कियों को उस नरक से बाहर खींच उन्हें भविष्य की समर्थ, दक्ष, विवेकपूर्ण, आत्मनिर्भर स्त्री बनाना है, जो अपने होने का रजिस्टर स्वयं आप बने।
पूँजी के अभाव में पुरबी दी ने अपने दो तल्ले के मकान को 'होम' में परिवर्तित कर स्थान की समस्या से छुटकारा पाया। बाबा वकील थे। टालीगंज में उनके छोटे–से चैंबर को उन्होंने अपना दफ्तर बना लिया। उसी के नीचे एक कमरा स्वयं के रहने–खाने के लिए किराए पर ले लिया। 'लेक गार्डन' के पड़ोसियों और नाते–रिश्तेदारों ने उनके सामाजिक परोपकार की भावना को घर–फूँक तमाशा माना और बिन ब्याही युवती की सनक। आगे चलकर उसके विश्लेषणों में कुछ मौलिक अध्याय और जुड़े। मसलन, यह भी कि इसके पीछे सेवा भावना कम, प्रचार पाने और सुर्खियों में बने रहने की महत्वाकांक्षा मुख्य पेंच है। चादर देह से खींच पुरबी दी उठ बैठीं।

करवटों के अधीन निष्क्रय पड़े रहना उन्हें वक्त को नाली में फिजूल उड़ेल नष्ट कर देने जैसा कष्टकर लगा। सोचा, कॉफी बना लें और चैतन्य हो पढ़ने वाली मेज पर जा बैठें। संग ही रहनेवाली नौकरानी बूढ़ी मौसी को नींद से जगाना उचित नहीं लगा। यह अलग बात है कि उनकी आहट से कभी–कभार मौसी की नींद उचट जाती है और वे जिदिया जाती हैं कि वे ही उनके लिए कॉफी बनाएँगी। रसोई में चूहों की खटर पटर ने याद दिलाया– मौसी ने न जाने कब से उनसे कह रखा है एक चूहेदानी मँगवाने को। वे हैं कि उन्हें व्यस्तता में स्मरण ही नहीं रहता कि 'होम' में ही किसी के हाथ पैसे पकड़ा दें और चूहेदानी लाने का जिम्मा उसे थमा दें।

सुतपा ने शिकायत भरे लहज़े में उन्हें टोका था : बच्चियों को समय के साथ जोड़ने के चक्कर में उनसे बहुत बड़ी गलती हुई है। जिस रोज से

'होम' में टी.वी. आया है, लड़कियों के लक्षण दिन–प्रतिदिन रंग बदल रहे हैं। पियासी बड़ी है। उनकी सरदारी भी वही करती है। टी.वी. चलाना भी सीख गई है। उनका आदेश है कि रात खाना खाने के उपरांत बच्चों को दूरदर्शन समाचार सुनवाए जाएँ और एकाध ज्ञानवर्धक कार्यक्रम भी उन्हें दिखाए जाएँ। लेकिन केतकी दी के लाख मना करने के बावजूद लड़कियाँ नियम का पालन नहीं करतीं। फिल्मी नृत्य और गाने देखने का हठ ठान लेती हैं। एक बार तो उसने रात नींद उचटने पर देखा कि हॉल में टी.वी. चल रहा है और सभी फूहड़ अँग्रेज़ी गानों पर नाचनेवालों का अनुकरण करती हुई कमर मटका–छाती हिला रही हैं।

रूमा को उसने बहुत पहले यह बात बताई थी कि जो लड़कियाँ उसके लाख प्रयत्नों के बावजूद बांग्ला का ककहरा ठीक से बोल–लिख नहीं पातीं, वे टी.वी. पर प्रदर्शित नृत्य और गीतों को इतनी जल्दी पकड़ लेती हैं कि देखकर दाँतों तले उँगली दबा लेनी पड़ती है।

सुतपा का टी.वी. हटवा देने का प्रस्ताव पुरबी दी को तर्कसम्मत नहीं लगा था। न समस्या का हल! पढ़ने लिखने की लगन अपनी जगह है, टी.वी. अपनी पढ़ाई को लेकर और लगाव जब तक बच्चियों में पैदा नहीं होगा, पैदा नहीं किया जाएगा, तब तक पढ़ना उनके लिए जरूरत नहीं बन पाएगा। फिर देश, समाज, नहीं होगा, पैदा नहीं किया जाएगा, तब तक पढ़ना उनके लिए जरूरत नहीं बन पाएगा। फिर देश, समाज, विश्व की सूचनाओं से उन्हें वंचित कैसे किया जा सकता है। उनके लिए यह भी जानना अनिवार्य है कि उनकी असली दुनिया और समाज कौन सा है। वह नहीं जो आँखें खोलते ही उन्होंने अपनी माँ के इर्द–गिर्द देखा पाया।

पियासी को वह किस मुश्किल से निकालकर ला पाई हैं! माँ के दलाल ने उसे तीन हजार में एक ऐसी औरत को बेच दिया था, जो उसका धर्म परिवर्तन कर, उसे 'जरीना' नाम देकर अपने संग 'जद्दा' ले उड़ने की तैयारी कर रही थी। पियासी की ही भाँति उसने तीन अन्य बच्चियों का सौदा कर रखा था। जद्दा में वह चकला चलाती थी। वहाँ के सख्त कानून के भय से वह बच्चियों को अपनी गोद ली बच्चियाँ बनाकर सँग ले जा रही थी। पियासी की माँ ने ही पुरबी दी को गुहार लगाई थी। पुलिस की मदद से पुरबी दी ने पियासी समेत अन्य तीनों को भी छुड़ाकर अपने कब्जे में ले लिया था। पुलिस के हत्थे चढ़ते ही उस औरत ने सच्चाई कबूल ली थी कि वह युवतियों को खरीदकर अपने संग नहीं ले जाना चाहती। वे किसी भी भारतीय या पाकिस्तानी ग्राहक के संग मेल–मिलाप बढ़ाकर उसे छोड़ चंपत हो सकती हैं लड़कियाँ उसी के संरक्षण में पलेंगी–बढ़ेंगी तो उसके नियंत्रण में रहेंगी।

मालिनी ने बताया – शिवानी और सुरंजना पढ़ती हैं या नहीं, मगर उसके कांथा और ब्लॉक प्रिंटिंग के प्रशिक्षण में वे गहरी रुचि ले रहीं हैं। अपनी नन्हीं उँगलियों से सुरंजना जिस फुर्ती से सुई में धागा डालती है और कांथा के टाँके उठाती है उसके लिए अचरज का विषय है। उसे तो यही लगता है कि सुरंजना टांकों में कुछ और पारंगत हो जाय तो निश्चित ही देश की संभवतः सबसे छोटी कांथा कलाकार होगी। सुनकर पुरबी दी के चेहरे पर क्षणांश संतोष की पुलक कौंधी। अगले ही पल तनाव के झुटपटे में बिला भी गई।

"वह तो सब ठीक है मालिनी! यह उनका अतिरिक्त गुण हो सकता है मगर... पढ़ाई... पढ़ाई का क्या होगा?"

"अपना 'होमवर्क' ये स्वयं लिखकर क्यों नहीं लाती ? समझाती नहीं रूमा, उन्हें तुम?" अपने स्वर की उग्रता उन्हें स्वयं चुभी थी।

"रोज ही समझाती हूँ। गौरी और शिवानी को छोड़कर शायद ही कोई और लड़की अपना होमवर्क स्वयं लिखकर लाती हो । ...एक–एक के पीछे पड़ती हूँ, दी। सच तो यह है कि सभी को मैं उतना समय नहीं दे पाती जितना दिया जाना चाहिए। कुछ दुष्ट भुच्च–सी निष्क्रयता ओढ़े प्रतीक्षा में ही बैठी रहती हैं कि मैं कब औरों से निपटूं तो उनकी बारी आए।"

"मौखिक में भी कुछ नहीं करके आई हैं। सामने खूब कविताएँ सुनाती हैं. ." रूमा की आवाज हताशा में थर्रा आई थी... ।

उनका संघर्ष व्यर्थ जाएगा? नचनियाँ बनेंगी। चेहरे लीप–पोत माँ की भाँति चौराहों पर खड़ी हो ग्राहक फँसाएँगी? रिक्शे–ताँगेवालों से फँस बच्चे जनेंगी... उफ्... कुछ नहीं बदल पाएँगी वह... कुछ नहीं! पुरबी दी के पाँव नदी के बीचोबीच उखड़ गए हैं। वे ऊभ–चूभ हो रहीं हैं। कोई टहनी हाथ नहीं लग रही कि जिसके सहारे वे लटक लें। बच लें।

कुछ लिखने लगी हैं वे अपनी मेज पर बैठते ही। ..डायरी के सीने में सिर रख रही हैं शायद! वही तो एक ठिकाना है बाबा–माँ के न रहने पर, जहाँ उन्हें सहलाहट और थपकियाँ नसीब होती हैं!

कानून उनका विषय नहीं रहा। बाबा का विषय था। बाबा का सान्निध्य जैसे उनकी कक्षाएँ हो गई। कम लड़ाई लड़ी उन्होंने इन बच्चियों को स्कूल में भरती करवाने के लिए! कब पैदा हुई, बाप कौन है इनका, माँ इन्हें लेकर खुद क्यों नहीं आतीं स्कूल ? क्या उनके मन में ललक नहीं कि उनकी बच्चियाँ पढ़ें? ....अभागियों को सेक्स वर्कर' माना जाए। कानूनी मान्यता मिले 'सेक्स वर्करों' के रूप में नागरिक सुविधाएँ मिलें। राशन कार्ड बने। पानी मिले। टट्टी मिले। चिकित्सा सुविधा मिले। वोट डालने का अधिकार मिले। सरकार की राजनीति लहलहाए। नए वोट बैंक मिलें। वह तो पुरबी दी विरोध में कूद पड़ीं। नागरिक सुविधाएँ उनका बुनियादी अधिकार है। उसके लिए उन्हें सेक्स वर्कर' का तमगा पहनाने की कतई जरूरत नहीं। उनका अलग समुदाय बनाने की कोई जरूरत नहीं। वैसी परिस्थिति में सेक्सवर्करों की औलादों का समाज की मुख्य धारा में विलय संभव होगा ?

आम, इमली घूरे पर उगने से आम या इमली नहीं रह जाते? इसी समाज की वे हैं। उसी का अंग, अंश.. तो उनकी औलादों को समाज से बहिष्कृत कैसे किया जा सकता है? उन मजबूरियों के जबड़े तोड़ना जरूरी है जो औरत के सामने देह का विकल्प परोसते बाज नहीं आते। पुरबी दी उसे ही तोड़ने निकली हैं। ...कुछ ने स्वेच्छा से अपनी बेटियों को उनकी गोद में डाल दिया। कुछ अब भी अविश्वास से घिरी अपनी बेटियों को अपनी सीली छाती से चिपकाए अपने होने की ऊष्मा सेंक रहीं। उन बस्तियों के बजबजाते अँधेरों को काटने वे लगभग रोज ही वहाँ पहुँच रही हैं। उन्हें मना–समझा रही हैं। अपनी जिंदगी के फंदे तो वह अपने मुताबिक बुन नहीं पा रहीं। बेटी, बेटों की बुन पाएँगी? कितने बेटों को पुरबी दी ने ले जाकर अनाथाश्रम में प्रवेश दिलाया है। वहीं रहें, पढ़ें, सीखें। वहाँ के अभाव उन अभावों से कहीं अधिक सुवासित हैं। कम– से–कम वहाँ किसी भविष्य का ककहरा तो है उनकी पाटी पर!

उमड़न का लावा अचानक यूँ ही तो नहीं फूट रहा! हाथ आँखें काँछने उठे पुरबी दी के। बेवकूफ बच्चियाँ नहीं जानतीं कि उनका फेल होना मात्र उनका फेल होना भर नहीं है, उनका फेल होना... उनके मोरचे का ढहना है. वे स्वयं को कहीं रोप नहीं पाएँगी तो अँकुआएँगी कैसे..?

शायद सुपता का कहना गलत न हो। भोडे नाच–गानों का अनुकरण करते देर नहीं लगती बच्चियों को!.. शायद यह भी सही हो कि देहों की भी किस्में होती हैं और वे अपनी किस्म को लेकर ही जनमती हैं, फलती फूलती हैं। आगे कलम निःशब्द हो रही है पुरबी दी की ! मटकती हैं तो कलम उनका ऐसे ही साथ छोड़ देती है...

सुबह देर से आँख खुली पुरबी दी की। मौसी ने पुकार मचाई। अचरज से भर हारी बीमारी में भी नियम टूटते कभी देखा जो नहीं, "ऊपर दफ्तर

में नहीं बैठना आज?"

"इच्छा नहीं हो रही मौसी!"

"तबीयत तो ठीक है ?" मौसी को मात्र उनकी इच्छा की बात सही नहीं लगी।

"कैसी हूँ, क्या बताऊँ !"

"राजरहाट जाना था न आज! कांथावाली औरतों की संगत करने।"

"सब व्यर्थ का आडंबर है। " स्वर में दबंग हुई। कुछ समझ में नहीं आया मौसी को सवेरे की टहल में उलझ गई वे उलझे हुए ही पूछा, "दोपहर में खाओगी क्या ?"

दोपहर में छठे–छमासे ही उनके लिए रसोई बनती है। मौसी का पूछना अस्वाभाविक नहीं था।

"अपने लिए जो चाहो, सो बना लो मुझे केवल एक कप कॉफी भर की जरूरत होगी। दूध मत डालना।"

पुरबी दी ने कहकर आँखें मूँद लीं। उठने की शक्ति हो तब तो उठ पाएँ। पड़ी रहीं बिस्तर पर कॉफी घुटकने भर के लिए उठीं। फिर लुढ़क गई। दिमाग में रेत उड़ रही है। तूफानी आँधी चल रही है। रेत उन्हें जबरन समाधि दे देगी। वे समाधि ले लेना चाहती हैं। अपने आप को और कहाँ छुपाएँ? गले में बाँध टूट रहे। ऐसे लीलते दिनों से सामना होगा सोचा नहीं था उन्होंने! ये टूटे बाँध आँखों के रास्ते बह रहे... बाबा, बाबा! वे पुकार रहीं हैं अँधेरे में बाबा का हाथ हाथ में नहीं आ रहा..

"दोपहर अढ़ाई के आसपास घर की घंटी ने बेसब्री दरसाई तो मौसी को सने भात से हाथ खींच उठना पड़ा।

झल्लाहट कुंडी खोलते ही अंतर्धान हुई सामने खिली–खिली–सी रूमा को खड़े पाया।

"पुरबी दी को तो बारह तक वापस लौट आना था राजरहाट से, ताला पड़ा हुआ है ऊपर दफ्तर में?"

मौसी ने बिस्तर की ओर इशारा किया "घर छोड़ती तब न पहुँचती!"

रूमा सिरहाने आ टिकी चिंतित–सी, "दी... दी तबीयत ?"

"उठना ही नहीं चाहती हूँ... उठकर करूँ क्या?" पुरबी दी ने आत्मालाप–सा किया आँखें खोल।

अधीर रूमा अपनी बात पर आना चाहती थी। पूछा, "दी, आपने सभी लड़कियों के नतीजे के कार्ड गौर से देखे थे ?"

"हां ,,, ।"

"गौरी और रत्ना का कार्ड भी देखा था?"

"सबके पढ़े तो उनका भी पढ़ा ही होगा।"

"नहीं पढ़ा। मेरा भी ध्यान नहीं गया आवेश में।"

"क्या मतलब?"

"रत्ना और गौरी का कार्ड उसमें था ही नहीं। उन्हें मिला ही नहीं था। कल उनकी क्लास–टीचर ही नहीं आई थी। आज मिले हैं। उनके नतीजे के कार्ड। देखिए !"

कार्ड खोलकर रूमा ने उनकी आँखों के सामने फैला दिए। अनिच्छा से पुरबी दी की आँखों ने नम्बरों पर दृष्टि डाली, "अरे.., बच्चियाँ पास हो गई!" पुरबी दी देह से चादर फेंक झपाटे से उठ बैठीं। पलंग पर तिरछे हो उन्होंने रूमा को विह्वल हो अंक में भर लिया। आँखें 'भल' बहने लगीं। होठ अस्फुट से बुदबुदा उठे– "मैं पास हो गई रूमा... पास हो गई मैं...!"

———————————————————

चित्रा मुद्गल
जी 57, मेधा अपार्टमेंट, मयूर विहार, फेज़–1,
नयी दिल्ली। फोन – 9873123237

उद्‌भ्रान्त
की कविता
बहुरूपिया

उसे देखा था बचपन में
तरह तरह के भेस बनाता
आता जब बाज़ार में
तो सभी की निगाहें उसकी ओर उठ
जातीं
कौतूहल से सभी देखते
कभी विस्मय से
कभी उसकी कलाकारी के लिए
भाव उठता प्रशंसा का भी
क्योंकि उसका रूप
सजीव होता बोलता हुआ
गोकि वह बोलता नहीं था
कभी लाल जीभ बाहर निकाले
गले में मुण्डमाला, कौड़ियों की माला
डाले
बाँये हाथ में खप्पर
लाल रंग में भरा गोया खून
दाँये हाथ में तलवार
पैरों में घुँघरू बाँधे
काले कपड़ों में
लम्बे बालों और
काली आँखों वाला वह
जब किसी दूकान पर आता
जहाँ मैं मौजूद होता पहले से
कॉपी या किताब की खरीदारी को
या कोई किताब या पत्रिका को
उलटते–पलटते
तो मैं सहम जाता
और दूकान के अन्दर खिसकता

जब तक वापस मुड़कर देखूँ
तब तक वह
अपने खप्पर में
छन्न की आवाज़ के सँग
दूकानदार के फेंके सिक्के को
चवन्नी–अठन्नी के
लेकर आगे बढ़ गया होता
दूकान का सारा कार्य–व्यापार
चलता रहता पूर्व की तरह ही
ग्राहक सामान खरीदते रहते
दूकानदार की
बिक्री जारी रहती बदस्तूर
और मैं छलाँग लगाकर बाहर

उसकी पाने एक झलक
निकलता फिर
किन्तु काली माँ की तरह
झलक अपनी एक दिखाकर ही
इस दृश्यमान जगत से जो
पहले ही
ओझल होता

मध्ययुगीन योद्धा कभी
कभी सिपाही
कभी सैनिक
कभी गुण्डा
कभी नेता
और कभी कभी तो रूप भिखारी के धरे
दीख पड़ता वह !
एक दिन साधु के वेश में,
अगले दिन खूंख्वार जल्लाद !
एक दिन तो सचमुच ही कमाल हुआ
प्रकट हुआ जब वह एक सिपाही के रूप में
नज़र आया करता हुआ वकालत
शिक्षा का स्तर सुधारने की !
एक दिन मदारी,
एक और दिन जादूगर, और कभी
अफ़सर भी!
जादू!
ओह, यह सब कुछ
जादू नहीं तो और क्या था?
एक दिन वह ईश्वर की तरह और
घोषणा करते हुए
कि 'धर्म बढ़ गया है इस क़दर
अब उसने ले लिया है अवतार
और धरती
जल्दी ही पापमुक्त होगी!'
कभी वह रिश्वत लेता हुआ नज़र आया,
कभी घूस देता हुआ!
आखिर एक बार जब कई दिनों तक
उसका हुनर नहीं हुआ सार्वजनिक
तो मैंने उसकी ख़बर ली

ज्ञात हुआ
उसका अन्तिम रूप एक डाकू था
जो इतना सच्चा था
देश और समाज में श्वेत–शफ़्फ़ाक
कपड़ों में विचरण करते हुए
अनगिनत डाकुओं के बीच भी
पुलिस ने अपनी क्राइम फ़ाइल को
करने दुरुस्त
पहचानने में नहीं उसे भूल की
और खिलौना पिस्तौल वाले
तथाकथित डाकुओं के बीच
मार गिराया उसे
दिन के उजाले में
एक मुठभेड़ में
और इस दुर्दात 'दस्यु' पर घोषित
लाखों रुपये का इनाम पाने को
अलग–अलग प्रान्तों की पुलिस के
विरोधी गुटों में
मची मारकाट !
इस तरह अपनी मुक्ति के साथ ही
तरह–तरह के भेस धर
गुज़र–बसर करते हुए
अप्रतिम उस कलाकार को
आखिर मिल ही गया
अपनी विलक्षण कला के लिए
जीवन का
सबसे बड़ा
पुरस्कार!

डॉ. रंजना जायसवाल

वजूद

दिल्ली एफ एम गोल्ड , आकाशवाणी वाराणसी और आकाशवाणी मुंबई संवादिता से लेख और कहानियों का नियमित प्रकाशन, पुरवाई, लेखनी, सहित्यकी, मोमसप्रेशो, अटूट बन्धन, मातृभारती और प्रतिलिपि जैसी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय ऐप पर कविताओं और कहानियों का प्रकाशन, साझा उपन्यास–हाशिये का हक, साझा कहानी संग्रह–पथिक, ऑरेंज बार पिघलती रही अट्टाहास, अरुणोदय, अहा जिंदगी, सोच विचार, सृजन, संगिनी, सरिता, गृहशोभा, सरस सलिल, दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर, अमर उजाला,दैनिक जनप्रिय इत्यादि राष्ट्रीय स्तर की पत्र –पत्रिकाओं से लेख, कविताओं और कहानियों का प्रकाशन।

सुधा के एम. ए. करते ही घर में जोर–शोर से शादी की बातें चलने लगीं। पापा अखबारों और पत्रिकाओं में सर डाले बैठे रहते और अपनी लाडो के लिए योग्य वर की तलाश करते रहते। कागजों के छोटे–छोटे टुकड़े पर योग्य वर...सुधा को न जाने क्यों कभी–कभी ऐसा लगता वो लड़कों का बायोडाटा नहीं एक लॉटरी है, लगी तो ठीक वरना...। सुधा एक अजीब सा जीवन जी रही थी, हर दूसरे–तीसरे महीने घर की साफ–सफाई शुरू हो जाती। चादरें बदली जाने लगतीं, सोफे के नीचे झाड़ू डाल–डाल कर सफाई होने लगती , सुधा माँ की इस हरकत पर मन ही मन मुस्कुरा देती। लड़के वाले उसे देखने आ रहे या फिर उसके घर को...पर माँ का यह भगीरथ प्रयास भी न जाने क्यों विफल हो जाता। सुधा देखने–सुनने में ठीक–ठाक थी पर न जाने क्यों लड़के वाले उसे हर बार मना कर देते।

लड़के वालों की मनाही कहीं न कहीं पूरे परिवार को तोड़ देती, कई दिनों तक घर में एक अजीब सी नीरवता छा जाती। सब एक–दूसरे से नजरें चुराते रहते, सुधा एक अजीब सी आत्मग्लानि से भर जाती। लड़के वालों के आने से पहले होने वाले तामझाम के पीछे छिपे अनावश्यक खर्चों से वो कसमसा कर रह जाती। पापा लड़के वालों को लुभाने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ते पर फिर भी...एक अजीब सा अपराधबोध सुधा को लगातार घेर रहा था। लड़के वालों की लगातार मनाही से वो अंदर ही अंदर टूट रही थी। एक दिन माँ भैया पर बुरी तरह चिल्ला पड़ी थी,

" कितनी बार कहा कि सुधा की फोटो किसी कायदे के स्टूडियो में खिंचवाओं, पर मेरी सुनता कौन है।"

"माँ! तुम भी न...फोटो का क्या है। मैंने तो उससे कहा भी था कि एक शेड गोरी करके प्रिंट निकालना पर पता नहीं इन लड़के वालों का कुछ समझ नहीं आता। आखिर उनको बहू लानी है कि हीरोइन।"

माँ न जाने क्यों अचानक से वहमी होती जा रही थी,

"सुधा के पापा.. अबकी लड़के वाले आयें तो उन्हें काजू वाली नहीं पिस्ते वाली मिठाई परोसेंगे। शुक्लाइन कह रही थी शुभ काम में सफेद नहीं रंगीन मिठाई खाई और खिलाई जाती है। हो सकता है लाडो की शादी इसी वजह से न हो पा रही हो।"

सुधा की साड़ियों का रंग भी हर लड़के वाले कि मनाही के साथ बदलता जा रहा था, शायद...???

नवीन और उसका परिवार पिछले महीने ही देख कर गया था, नवीन के परिवार ने सुधा को देखते ही पसन्द कर लिया। माँ के पैर तो जमीन पर ही नहीं पड़ रहे थे। सुधा

ने भी कहीं न कहीं राहत की सांस ली, इस रोज़ –रोज़ के दिखावे से वो भी तंग आ चुकी थी। दो साल का वनवास आज ख़त्म हो गया था, वो खुश थी शायद इसलिए... क्योंकि घर मे सब खुश थे। आज तक वो उनकी खुशी में ही तो खुश होती आई थी। खुद की खुशी क्या है... वो कब का भूल चुकी थी।

पापा और मम्मी नवीन के परिवार से आगे की बात करने के लिए कल सुबह ही निकल गए थे, रात में पापा के फोन आने के बाद घर में एक अजीब सा भूचाल मचा हुआ था। सुधा पूरी रात सो नहीं पाई थी। भैया सुबह–सवेरे ही उसके कमरे में चले आये थे, वो उसे काफी देर तक समझाते रहे। सुधा विचारों के भंवर में डूब उतरा रही थी। भैया बिस्तर से उठ खड़े हुए,

"सुधा सोच लो, कोई दबाव नहीं है। पापा–मम्मी ने मुझ पर ये जिम्मेदारी छोड़ रखी है। कोई तुम्हारा बुरा नहीं चाहता, तुम जो फैसला लोगी वो सबको मंजूर होगा।"

भैया ने हाथ बढ़ाकर कमरे के पर्दे को हटाया और कमरे से बाहर निकल ही रहे थे कि सुधा ने पीछे से आवाज लगाई,

"भैया...??"

"क्या हुआ... कुछ कहना चाहती हो...बोलो मैं सुन रहा हूँ।"

भैया चुपचाप बिस्तर पर आकर बैठ गए, सुधा के चेहरे पर एक अजीब सी बेचैनी थी। वो समझ नहीं पा रही थी कि बात कहाँ से शुरू करे।

"भैया!!...आप बुरा न माने तो एक बात पूछूँ.."

"बोल न ..मैं सुन रहा हूँ। "भैया ने बड़े प्यार से सुधा के सर पर हाथ फेरा।

"भैया!..अगर ऐसा ही रिश्ता आपके लिए आया होता तो क्या आप...आप तैयार होते, आप शादी के लिए हाँ कर देते।"

शिकायत नहीं थी उसे किसी से.. होती भी तो किससे, फैसले लेने वाले लोग भी अपने ही तो थे पर आज तक उसके जिंदगी के फैसले दूसरों ने ही लिए थे। किस साइड से उसे पढ़ना है, कौन से विषय उसे लेने चाहिए, कॉलेज जाने के लिए इस रंग का सूट नहीं, बिल्कुल भी नहीं, पढ़ने जा रहे हैं कोई बाजार–हाट घूमने नहीं। कॉलेज से इतने बजे तक आ जाना. उफ्फ। सुधा ने अपने कान बन्द कर लिए...चारों तरफ विचारों का एक अजीब सा कोलाहल था पर भीतर एक गहरा सन्नाटा पसरा हुआ था। माथे पर पसीने की चंद बूंदे चुहचुहा गई।

"बोलिये न भैया!...क्या आपने ऐसे रिश्ते के लिए हाँ कही होती।"

"नहीं...बिल्कुल भी नहीं!"

सुधा भैया के चेहरे पर अपने सवालों के जवाब ढूंढ़ती रही, भैया के इस एक शब्द से उसकी दुनिया हिल गई।

"क्यों..?"

"मेरे पास इतने सारे विकल्प हैं तो मैं क्यों ऐसी लड़की को पसन्द करूंगा। मुझे एक से एक लड़कियाँ मिल जाएगी। पढ़ा–लिखा हूँ, अच्छा–खासा कमाता हूँ, मुझे लड़कियों की कौन सी कमी...जो मैं ऐसी लड़की से शादी करूँ।"

सुधा आश्चर्य से भैया का मुँह देखती रह गई, भैया अपनी ही दुनिया में मस्त थे। पुरुष होने का दम्भ अचानक से उनके चेहरे पर दिखने लगा था, पढ़ी–लिखी तो वो भी थी। शायद परिवार का प्रोत्साहन मिल जाता तो नौकरी भी कहीं न कहीं मिल ही जाती पर..

"हमारी जाति में ज्यादा पढ़ाया नहीं जाता। इतना पढ़ा–लिखा लड़का कहाँ से लाएंगे, वैसे भी सम्भालनी तो गृहस्थी ही है, फालतू में समय और पैसा क्यों बर्बाद करना।"

कितनी आसानी से कह दिया था माँ ने, कितना लड़ी थी उस दिन वो माँ से...

"अपनी जाति में लड़के न पढ़े इसलिए मैं भी न पढ़ूँ ये कहाँ का न्याय है। मेरे सपनों को क्यों कुचल रही हो माँ.."

न जाने क्या सोचकर सुधा की आँखें भीग गई, पर भैया न जाने किस दुनिया मे खोए हुए थे।

"सुधा!...गनीमत है लड़के वालों ने कुछ छिपाया नहीं, ये तो उनकी शराफत है वो चाहते तो छुपा भी सकते थे। भगवान का शुक्र है हमें शादी से पहले ही पता चल गया।"

"ऐसे कैसे छुपा लेते भैया...शादी–ब्याह का मामला है। दो परिवारों के विश्वास की बात है।उन्हें लगा होगा किसी तीसरे से पता चले उससे अच्छा है कि खुद ही बता दें।"

" तू कितनी भोली है, अभी तूने दुनियां देखी ही कहाँ है.."

"भैया!...उन्हें भी डर था कि अब गोद भराई तक बात पहुँच गई है ,अब नहीं बताया तो सब गड़बड़ हो जाएगा पर गड़बड़ तो हो गई न..."

" गड़बड़ कैसी...?"

"इतना बड़ा सच उन्होंने हमसे छुपाया और आप कह रहे हैं..."

"दिक्कत क्या है सुधा...इंजीनियर है...इकलौता है..शहर के बीचों–बीच दो मंजिला मकान है। पूरा परिवार तुम्हें हाथों–हाथ लिए रहेगा और क्या चाहिए तुम्हें...?"

"भैया! उसके पैर में रॉड पड़ी है। कल!!"

"सुधा!..वो एक दुर्घटना थी। हड्डी टूट गई,डॉक्टर ने रॉड डाल दी। तुमने भी देखा है नवीन को चलने–फिरने में कोई दिक्कत नहीं है।"

"पर कल..!"

"कल क्या....उन्होंने बताया कि रॉड जिंदगी भर भी पड़ी रहे तो भी कोई दिक्कत नहीं और निकाल ले तो भी..."

"पर..!!"

"पर–वर कुछ नहीं।"

सुधा की आशंका गहराती जा रही थी, सुधा के पास इस रिश्ते से इंकार करने के सारे तर्क भैया ने ध्वस्त कर दिए थे। एक तरफ सबने फैसले लेने के सारे अधिकार भी उसके नाम से सुरक्षित कर दिए थे और दूसरी तर्क पर तर्क दे उसकी शंका, उसके सवालों को ध्वस्त करते जा रहे थे। न जाने क्यों... उसे ऐसा लग रहा था मानो वो कोई विज्ञापन देख रही हो जहाँ सामान की कोई गारन्टी नहीं लेना चाहता और उद्घोषक वैधानिक चेतावनी के नाम पर नियम–कानून इतनी तेजी से बोलता है कि आप सुनकर भी सुन नहीं पाते।

"सुधा!..एक बात कहूँ, पति अपने से कुछ कमतर हो तो जीवनभर एहसान तले दबे रहता है। परिवार तुम्हें देवी की तरह पूजेगा और समाज की नजरों में तुम हमेशा महान बनी रहोगी। जानती हो नवीन की मम्मी बता रही थी कि नवीन ने अपना सर्टिफिकेट भी बनवा रखा है ट्रेन में उसका टिकट मुफ्त हो जाता है और साथ चलने वाला का आधा... मौज ही मौज रहेगी तुम्हारी।"

सुधा आश्चर्य से भैया को देख रही थी, नवीन अपने परिस्थितियों के आगे अपाहिज थे, लाचार थे...ईश्वर ने उनके साथ अच्छा नहीं किया पर क्या ये समाज भी मानसिक रूप से अपाहिज नहीं है। महान बनने का इससे अच्छा शॉर्ट कट कोई हो ही नहीं सकता था, कहीं न कहीं इस रिश्ते के लिए पापा–मम्मी और भैया का मन भी गवाही नहीं दे रहा था, जिंदगी भर उसके हर छोटे–बड़े फैसले आज तक वो ही लोग ले रहे थे पर आज...। कही न कही भैया ने अपनी बातों से ये जता भी दिया था कि लड़कियों का क्या है उनके लिए कुछ भी चलता है पर क्या सच में...कल समाज को जवाब देते–देते वो थक जाएगी। कमी उसमें नहीं नवीन में थी पर उंगलियाँ हमेशा उस पर उठेंगी, जरूर कोई बात होगी जो घर वालों ने ऐसे लड़के से शादी कर दी।

महान बनने का इससे अच्छा मौका उसे नहीं मिलेगा पर क्या वो सचमुच अपने पति को बेचारे की तरह उम्र भर चाहना चाहती है ...आज पहली बार किसी ने उससे उसकी राय,उसका फैसला पूछा है , एक बारगी उसे नवीन पर दया भी आती थी पर कहीं न कहीं वो भी तो समाज की मानसिक विकलांगता की शिकार थी।

सुधा फैसला कर चुकी थी, इस फैसले का जो भी परिणाम हो पर अब वो समाज की खोखली विकलांगता का शिकार नहीं हो सकती। सभी को अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी, चाहे सामने कोई भी हो।

"भैया ! मैं माफी चाहती हूँ, मैं ये शादी नहीं कर सकती। मम्मी–पापा को बता दीजियेगा...लड़के वालों को मना कर दें।"

भैया हक्के–बक्के से सुधा को देख रहे थे, शायद उन्हें सुधा से इस बात की उम्मीद नहीं थी। शायद वो भी ये मानकर चले थे कि लड़कियों के लिए कुछ भी चलता है पर नहीं बस अब और नहीं। किसी न किसी को तो कदम तो बढ़ाना ही होगा..सुधा का चेहरा आत्मविश्वास से चमक रहा था। सुधा के एक फैसले ने जता दिया कि लड़कियों के लिए 'कुछ भी' नहीं चलता। सुधा सोच रही थी कि सही मायने में विकलांग कौन था नवीन या फिर समाज.?

———————————————

डॉ. रंजना जायसवाल
लाल बाग कॉलोनी
छोटी बसही
मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश
पिन कोड 231001
फोन – 9415479796

UVACH ADVERTISEMENT RATE CARD

COLOUR		OFFERS
Full page	25,000	BOOK 2 INSERTIONS GET 3RD INSERTION FREE
Half page	15,000	
Back page	40,000	
Cover Inside page	30,000	BOOK 4 INSERTIONS GET 5TH & 6TH INSERTION FREE
Centre Spread	40,000	
Front Page Bottom strip only (19.5 X 4 cm)	30,000	

Black & White ads - 30% less on the above cost

PRINT MECHANICALS

High Resolution CMYK PDF, EPS, JPG or TIFF.
All images must be embedded and fonts outlined.
Size : Non-bleed - 24.5 X 17 cm., Bleed size - 27 X 19.5 cm
Please note : We do not accept Word or Publisher File

All payments to be made in favor of
Mudrarakshas Hindi Sahitya Foundation

FOR AD BOOKINGS
CALL :9810590061

हरभजन सिंह मेहरोत्रा

चंदा का मंदहास

जन्म कानपुर में। अभियान्त्रिक अभियन्तरण में उपाधि हासिल करके जीवकोपार्जन। पांच उपन्यास, तीन कहानी संग्रह, तथा साथी कहानीकारों के व्यक्तिचित्र पर एक उल्लेखनीय पुस्तक सफर के साथी प्रकाशित, तकनीकी विषयों पर कई पुस्तकें प्रकाशित। सभी प्रमुख पत्रिकाओं तथा पत्रों में कहानियां, लघुकथाऐं, लेख और समीक्षाऐं प्रकाशित कई पुरुस्कृत भी हुईं। 1997 में अखिल भारतीय सैनिक परिवेश पर आधारित कहानी प्रतियोगिता में कहानी जिजीविषा बिगुल संस्था द्वारा प्रथम पुरुस्कार से सम्मानित। साहित्य में उल्लेखनीय योगदान के लिए श्री मंत माधव राव सिंधिया स्मृति पुरुस्कार वर्ष 2018, इनोवेटिव लीडर–शिप अवार्ड वर्ष 2019 तथा अन्तरराष्ट्रीय कथाश्री पुरुस्कार वर्ष 2021 से सम्मानित।

चरन सिंह कालोनी से बांये मुड़ने पर जो सड़क दिखाई दे रही थी उस पर चलते हुए स्वर्ग आश्रम तक पैदल पहुंचने में पन्द्रह–बीस मिनट का समय तो लग जाना था। श्मशान स्थल नजदीक आया देख अर्थी लेकर जा रहे लोगों में मंजिल समीप जान कर जोश आ गया था, और वे ज़ोरों से चिल्लाने लगे थे, "राम नाम सत्य है।" अर्थी के ठीक पीछे चल रहे अविलंब लांबा भी पूरी शक्ति लगा कर चिल्लाया था। इसी दौरान चावल बीन रही एक लड़की पर उसकी नजरें चली गयीं थी। जो अपने घर के बाहर चारपाई पर बैठी इत्मीनान से अपने काम में संलग्न थी। इस बात से पूरी तरह निरपेक्ष और उदासीन कि उसके सामने से किसी की अन्तिम यात्रा गुज़र रही है। हो सकता है देखा भी हो और इसे रोज की तरह उसके दरवाजे के सामने से निकलने वाली अर्थियों को देखते–देखते एक दिनचर्या मान कर अपने आपको अभ्यस्त कर लिया हो। यह तो रोज़ का रोना है। इसमें क्या नया। जीवन है तो मृत्यु भी है।

यहां पर रहने वाला हर शख्स कोई खास तवज्जो नहीं दिखा रहा था। सभी अपने काम में मग्न थे यह बस्ती भी काफी दूर तक फैली हुई थी। दूसरी तरफ नहर थी। जिसमें बहुत ज्यादा पानी नहीं था और स्थानीय लोगों के कूड़ा–करकट डालने से पानी भी गंदा हो चुका था।

बहरहाल जिस समय शव यात्रा लड़की के करीब से गुजर रही थी तभी इत्तेफाक से लड़की ने भी अविलंब को देखा था। क्षणांश भर का समय गुज़रा होगा दोनों की आंखें चार होने में। तुरंत ही लड़की अपने काम में फिर से तन्मय हो गई थी। यह बात और है कि अविलंब उससे निगाहें नहीं हटा सका। जब तक कि वह आगे नहीं निकल गया। एक तरह से देखा जाये तो लड़की उसकी आंखों में बस गई थी। उसने मेहरुन रंग की कुर्ती और सफेद पैजामी पहनी हुई थी। पैरों में पाजेब भी थी। चोटी गुंथे बाल हवा के वेग से आवारों की तरह बिखर आये थे या यह भी हो सकता है कि रात को सोई हुई, उठ कर उसने अभी बाल न काढ़े हों। ताज्जुब था इतने अल्प समय में उसने उसकी पूरी देह की नख से शिखा तक पूरी जांच–पड़ताल कर ली थी हकीकत यह थी कि लड़की उसे भा गई थी। तभी तो वह उसे भुला नही पा रहा था। श्मशान में पहुंच कर लकड़ियाँ उठाते समय भी उसे बार–बार वो लम्हा याद आता रहा जब एक नज़र उस पर डाली थी। नतीजन बेध्यानी में उसने इतनी लकड़ियाँ उठा लीं थी कि खड़े होते समय उसका सन्तुलन बिगड़ गया। गिरने लगा तो उसके दोस्त सुदेश ने उसे सहारा देते हुए उसकी बांह थाम ली। गिरने से बच गया लेकिन बांहों में थामी लकड़ियाँ सब नीचे गिर गयीं। अर्थी के साथ आये लोग उसकी ओर देखने लगे। किसी ने तुरन्त नसीहत भी दे डाली, " उतना ही बोझ उठाना चाहिये जितना शरीर उठा सके।"

"कहाँ खोये पड़े हो। इतनी लकड़ उठा भी सकते हो सीकिया पहलवान।" बगल में खड़े उसके मित्र ने मज़ाकिया लहज़े में कहा। कोई और वक्त होता लाम्बा ने उसे झाड़ के रख देना था पर इस समय चावल बीनती लड़की का खुमार उस पर चढ़ा था। इसलिए मुस्कुरा कर रह गया।

चिता सज गई थी। पंडा मंत्रोचारण कर रहा था लेकिन अविलम्ब अपने दोस्त के बगल में उसी लड़की के ख्याल में मदहोश हुआ खड़ा था। एकाएक उसे जलती चिता देख आभास हुआ वह हवन कुण्ड के पास बैठा है। उसके बगल में विवाह का जोड़ा पहने चावल बीनती लड़की बैठी है और पंडित विवाह में पढ़े जाने वाले मंत्र पढ़ रहा है।

चिता की आग की लपटें जब जोरों से उठने लगीं तो लोग उसकी तपिश से पीछे हट गये। सुदेश ने जब देखा अविलंब अपनी जगह से हिला नही तो उसका बाजू पकड़ कर पीछे खींचा। एकाएक इस घटना से वह हड़बड़ा गया और संशय से भर कर उसने दोस्त की तरफ देख कहा, " क्या हुआ...!"

" कुछ नही चुप्पे खड़े रहो।" सुदेश ने उसे झिड़का।

लाम्बा को समझते देर नहीं लगी कि सुदेश ने उसे पीछे क्यों खींचा है, " यार...! क्या बतांऊ... एक लड़की अभी देखी है, रास्ते में.... स्साली मेरे दिलो–दिमाग में छाई पड़ी है।" लड़की का नाम सुनते ही सुदेश के कान खड़े हो गये।

' कहाँ–कहाँ।' बोला नही सिर्फ आंखों से इशारा करते हुए पूछा।

" बस्स थोड़ा सा आगे जा कर।" अविलंब की आंखें मानो हर्ष से बरस रहीं थी। जैसे बहुत बड़ी नियामत मिल गई हो।

" खुश तो ऐसे हो रहे हो जैसे मिल गई हो।" तभी पण्डे की आवाज से उन दोनों की बातों में विराम लग गया। पण्डा सब को जलती हुई चिता की ओर पीठ करके खड़े होने के लिए कह रहा। सभी आये हुए लोग जलती चिता की ओर पीठ करके खड़े होगये।

कुछ देर बाद लोग धीरे–धीरे खिसकने लगे थे। अविलंब ने भी सुदेश को चलने के लिए टोका। सुदेश ने इधर–उधर देखा। जो दो–तीन लोग उनके पास से गुजरे थे वे बाग की ओर निकल गये थे। स्वर्ग आश्रम मे बनाया गया बाग सभी श्मशान स्थल से अलग था। इस तरह का बगीचा कहीं पर नही बना था। लोग सुबह–शाम बाग में घूमने आते थे। कुछ लोग पत्थर की बेन्च पर पल्थी लगा कर ध्यान भी लगाते थे।

सुदेश ने लांबा को कुछ देर और रुकने के लिये कहा। जबकि लांबा बाहर जाने के लिए उतावला हुआ पड़ा था। शायद चावल बीनती लड़की अभी बाहर बैठी हो। वैसे उसके न होने की संभावना उसे ज्यादा लग रही थी। धूप तीखी और तेज थी। हो सकता है गर्मी की वज़ह से घर के अन्दर दुबक गई हो। वह उसकी शक्ल याद करने लगा। बिना काजल लगाये उसके कजरारे नयन, रस टपकते होंठ और प्यारे से गाल। इतनी सुन्दर लड़की उसने इससे पहले नही देखी थी। जिस विधालय में वह पढ़ता था वहां लड़कियां भी पढ़तीं थी। लेकिन उसे कोई लड़की ऐसी नही मिली जिस पर उसकी निगाहें ठहरती। आज उस लड़की को देखते ही वह उस पर मुग्ध होगया था और मन ही मन फैसला किया था उसे वह अपनी दुल्हन बना कर रहेगा। अविलंब ने जब सुदेश से अपने मन की बात बतायी थी तो वह मन ही मन हंसा था, " कोई इतनी जल्दी किसी से कैसे प्यार कर लेता है। अविलंब ने कहा था, लव एट फर्स्ट साईट। और सुदेश की मुर्दानी छाये माहौल में हंसी मुखरित हो आयी थी। जगह का ख्याल आते ही उसने अपने मुँह पर हाथ रख लिया था। सुदेश ने वास्तव में अविलंब को गम्भीरता से लिया ही नही था। उसका मानना था कोई भी इस तरह की स्थिति मे प्रेम व्रेम नहीं कर सकता। बल्कि प्यार हो ही नही सकता था। वह नही जानता था अविलंब उस लड़की पर इस कदर संज़ीदा है कि वह उसे पाने के लिये कुछ भी कर गुजरेगा। वैसे उसे स्वयं भी अपने ऊपर ताज्जुब था कि उसे आखिर हो क्या गया है। फिलहाल उसे यह चिन्ता परेशान कर रही थी कि वह दोबारा उसे कब और कैसे देख पायेगा। उसने सुदेश को ' अभी आया' कह कर बाहर निकल गया। कुछ आगे तक चलते हुए जब वह उस जगह पर गया जहाँ वह बैठी चावल बीन रही थी। वहां अब कोई नही था।

चारपाई खड़ी कर दी गई थी। दरवाजे पर बड़े–बड़े फूलों वाला नीले रंग का पर्दा हवा से लहरा रहा था। हो सकता है उस समय बिजली न आ रही हो इस लिये बाहर बैठी हो। उसे अपनी सोच तर्कसंगत लगी। वह वापिस मुड़ गया और सुदेश को खोजने लगा। सुदेश उसे नल के पास मुँह हाथ धोते दिखा। वह उसके नजदीक चला आया। उसने भी अपने ऊपर पानी डाला, हाथ–मुँह धोया। सुदेश बाहर जाने लगा तो अविलंब ने उसका हाथ पकड़ कर अपनी तरफ खींचा। सुदेश उसे देखने लगा।

" आओ कुछ देर बागीचे में बैठते हैं।" अविलंब ने कहा।

" अरे इस धूप में...!"

" कहीं छाँव होगी...आओ तो सही।"

सुदेश उसके साथ हो लिया। पूरा बागीचा धूप से नहाया हुआ था। एक कोने में छाया थी। दोनो वहीं जाकर बैठ गये, " जी चाहता है यहीं पर अपना डेरा जमा लूं....कितनी शान्ति है।

" हां तुम्हे तो शान्ति लगेगी। एक अदद प्रेमिका जो मिल गई तुम्हें। ऐसा कर तूं यहां धूनी रमा, मैं चलता हूं।"

" सच कह रहा हूँ। यहाँ से जाने को मन ही नहीं करता"

अविलंब को गम्भीर बना देख सुदेश से रहा नहीं गया, " देख भाई तुमने उसे एक सेकेण्ड देखा और तू इतना सीरियस हो गया।" समझाने के अंदाज में बोला, " कोई ऐसा बिहेव करता है...तुमने बेवकूफी की हदें पार कर दी हैं। हो सकता उसका कोई ब्वाय फ्रेंड हो। पहले से ही इंगेज हो। तुमने तो कमाल कर दिया"

" यार तुम तो उपदेश देने लगे...चल भाई, चलते हैं।" अविलंब उठ गया। दोनों बाहर निकले तो एक और अर्थी श्मशान स्थल के परिसर में प्रवेश कर रही थी। कुछ देर के लिये दोनो, गेट से जरा हट कर किनारे खड़े हो गये। अंतिम यात्रा गुज़र जाने के बाद दोनों बाहर निकले। लड़की के दरवाजे के सामने से गुज़रते हुए अविलंब ने उस ओर देखा। किवांड़ अब पूरी तरह बंद थे। उस पर निराशा सी हावी हो गई। दोनो मित्र पैदल ही चरन सिंह कालोनी की तरफ निकल गये। ज्यादा दूर नही रहते थे दोनों। सुदेश थोड़ा आगे दूसरे मोहल्ले में रहता था।

वैसे तो अविलंब के घर आने पर उसके छोटे भतीजे प्रिन्स ने उसे घेर लिया और अपनी बाल सुलभ हरकतों से उसे रिझाने लगा। बावजूद इसके उसके ख्यालों से, स्वर्ग आश्रम के रास्ते पर चावल बीनती वो लड़की ओझल नहीं हो पायी। बाद में उसने भी प्रिन्स के साथ खेलना शुरु कर दिया पर आंखों में वही क्षण कैद होकर रह गया जब दोनों की आंखें चार हुईं थी। रात सोते वक्त भी यही हाल रहा, और जब सुबह उठा लड़की का चेहरा फिर से उसके मन–मस्तिष्क में जीवन्त हो उठा।

नहा–धोकर नाश्ता करने के बाद उसे याद आया दो–तीन लिफाफे उसने पिछले दिनों तैयार किऐ थे। कुछ जगह पर नये इन्जीनियरों की भर्ती की जगहें निकली थी। आवेदन पत्र तो बना लिये थे। लेकिन डाक से भेजने का काम रह गया था। कुछ जगहों पर ई–मेल से अप्लिकेशन फार्म मंगवाये थे वो तो उसने तुरंत भेज दिये थे। पर जहां पर आवेदन पत्र की प्रतियां मंगवाईं थी वहाँ पर डाक से भेजने का काम रह गया था। सोचा अभी यह काम कर लिया जाये। लगे हाथ स्वर्ग आश्रम की तरफ भी हो लेगा। हालांकि डाक घर और स्वर्ग आश्रम के रास्ते एक दूसरे के विपरीत पड़ते थे।

लिफाफों का बण्डल उठा कर वह बाहर निकल आया। सोचा सुदेश को ले लिया जाये। फिर दिमाग में आया लड़ाई उसकी है। उसे स्वयं लड़नी चाहिए। वह अकेला ही स्वर्ग आश्रम की ओर निकल पड़ा। रास्ते में लड़की का घर उसे बंद मिला। आश्रम चला आया और दो तीन चक्कर बाग के काटे। फिर बाहर निकल आया। तेज धूप और गर्मी से वह पसीना–पसीना हो गया था। फिर भी उसे उम्मीद थी लड़की उसे जरुर मिलेगी। यहाँ तक उसने सोच लिया अगर लड़की उसे दिख गई तो कहीं न कहीं उसे नौकरी भी मिल जायेगी। स्वर्ग आश्रम से बाहर निकलते हुए उसके दिल की धड़कने बढ़ गईं। पर उसकी आशा ने उसका साथ नही दिया। लड़की के घर का दरवाजा पूर्ववत बन्द था।

क्षण भर में उसकी हालत ऐसी हो गई। मानो एनाकोण्डा ने जैसे

उसके शरीर का सारा रक्त चूस लिया हो। वास्तव में उससे चला नही जा रहा था। टांगों में कंपन होने लगा था। वह डाक खाने ना जाकर घर वापिस आ गया। धूप और चढ़ आयी थी। दोबारा वहाँ का चक्कर लगाना उसे फिजूल लगा। घर पर बच्चे संग मन लगाने की कोशिश की। इसमे उसे सफलता भी मिल गई। घर में कोई छोटा बच्चा हो तो पूरे घर का मन लगा रहता है। जल्दी ही अविलंब ने अपने दिलो दिमाग में काबू पा लिया लेकिन दुबारा लड़की से मिलने की आस नही छोड़ी। आज नहीं तो कल या कभी तो मिलेगी। वह झटपट से अपने दिल की बात उसे बता कर इस तरह के हालातों से बचना चाहता था कि वह उसके घर के चक्कर ही लगाता रह जाये और वह कहीं फुर्र न हो जाये।

अचानक उसके दिमाग में एक तरकीब आई। इस विचार से उसे बहुत बड़ा सम्बल मिला और राह आसान जान पड़ी। कम से कम वह फालतू तो उसके घर के चक्कर नहीं लगायेगा। इस तरह से वह लोगों की नजरों में नहीं चढ़ेगा। वह अपनी तरकीब से खुश था। मानो इससे उसकी मुराद पूरी होने वाली हो।

अगले दिन वह ठीक नौ बजे के आस पास चरन सिंह कालोनी के उस मोड़ पर खड़ा था जहां से मुड़ने पर स्वर्ग आश्रम का रास्ता आता था। तकदीर उसकी अच्छी थी उसे एक अर्थी आती दिखी। जब अंतिम यात्रा में शामिल लोग अविलंब के पास से गुजरने लगे तो झट से वह उस यात्रा में शामिल होगया। राम नाम सत्य है का उदघोष करते लोग आगे बढ़ रहे थे। उस मोड़ से लड़की का घर दूर था। वहाँ तक पहुँचने में पन्द्रह मिनट का समय तो आराम से लग जाना था। वैसे भी सड़क थोड़ी घुमावदार थी जिससे काफी दूर का दृश्य नहीं दिखाई देता था। उसका दिल फिर से धड़कने लगा था। क्या पता मिलती भी है या फिर वही मायूसी हाथ लगती है। इसी सोच–विचार में डूबे वह लड़की के घर के पास तक आ गया। अविलंब की निगाहें उस ओर गईं। लड़की को रस्सी पर गीले कपड़े डालते देखा तो उसके अन्तर के अन्धेरो में पड़े कोनों में मानो दिवाली आ गई। वह पूरी शक्ति लगा कर चिल्लाया, " राम नाम सत्य है।" आवाज इतनी बुलन्द थी कि लड़की ने उसकी ओर देखा। वह तो उधर ही देख रहा था। अपनी ओर लड़के को उन्मुख हुए देखा तो लड़की की नज़र भी उस पर ठहर गई। अविलंब वहीं अहिल्य हो गया। तभी पीछे वाले का कन्धा उसके लगा तो विवशता वश उसे आगे बढ़ना पड़ा। आज वह लड़की को जतला देना चाहता था कि वह उसमें आसक्ति रखता है। पर उस नामुराद आदमी ने एक तरह से उसे धकियाया था। आगे बढ़ते ही उसे अहसास हुआ लड़की शायद उसे पहचान गई है। अगर नही पहचानी तब भी उसे कुछ तो आभास मिल गया होगा उसकी नियत का। उसने पीछे मुड़ कर देखा। लड़की रस्सी पर कपड़े डाल कर मुड़ते हुए घर के अन्दर दाखिल हो रही थी लेकिन इस प्रक्रिया में उसने शव यात्रा की तरफ यूं ही देखा तो अविलंब को उसने अपनी ओर देखते पाया । फिर झटके से गर्दन सीधी करके घर में घुस गई थी।

अविलंब का काम पूरा हो गया था। उसे अर्थी या अर्थी के साथ आये लोगों से कोई सरोकार नही था। वह स्वर्ग आश्रम के मुख्य द्वार से ही वापिस मुड़ गया। चलते–चलते उसने यह निष्कर्ष निकाला कि लड़की के मन में उसके लिये कोई भाव नहीं है। अगर जरा सी भी उसके प्रति संज़ीदा होती तो वह इस तरह से गर्दन न घुमाती। उसे लड़की का सिर घुमाना अपने लिए बेरुखी भरा लगा। यह बात उसे कचोट गई। वह काफी देर तक गुमसुम सा बना रहा। फिर अपने आपको उसने समझाया कि इस तरह, एक नजर भर देखने से सब को प्यार नही हो जाता। उसकी बात कुछ अलग है। वह लड़का है। लड़की को अपना बनाने के लिए उसके अंदर गहरे तक उतरना पड़ता है। उसके लिए संयम और समय दोनों चाहिए।

फिलहाल उसने तय किया कि वह मिशन अर्थी निर्विघ्न जारी रखेगा। दूसरे सुदेश को अपनी गतिविधियों का किंचित मात्र आभास नहीं होने देगा।

आज जो कुछ भी हुआ। उसके लिए उसे पर्याप्त सन्तोष मिला। सारा दिन खुशी का अहसास उस पर हावी रहा।

अगले दिन वह फिर मोड़ पर आ कर खड़ा हो गया। लेकिन कोई अर्थी ही नही गुजरी। बहरहाल वह रोज एक अदद अर्थी की तलाश में नियत स्थान पर खड़ा हो जाता। कभी किसी की अन्तिम यात्रा आती दिख जाती तो उसका दिल बल्लियों उछल जाता। कभी लड़की भी दिख जाती। वैसे अब तक लड़की को इस बात का अंदाजा हो गया था कि यह लड़का उससे मिलने के लिऐ ही शव यात्रा में शामिल होता है। वह नही दिखती तो अविलंब की आवाज घर के भीतर से सुन लेती तो तुरंत घर से बाहर आ जाती।

अविलंब को भी यह महसूस हो चला था कि वह उसकी ओर आकर्षित हो चुकी है। यह बात और थी कि उनके बीच कोई बातचीत का सिलसिला नहीं शुरु हो पा रहा था। नाम तक नहीं जान पाया था, उसका। उसने उसको एक नाम दिया था, चन्दा। कल्पना में उससे बातें करता तो उसे चन्दा के नाम से ही सम्बोधित करता।

एक दिन अविलंब सुबह सवेरे की हवा खाने स्वर्ग आश्रम के बाग में पहुंच गया। वहां बूढ़े–बुजुर्गों को टहलते और योगा करते पाया। वह बाग के किनारे–किनारे दौड़ लगाने लगा। एक जगह उसे कुछ लड़कियों को खड़े पाया। उसने उधर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। लेकिन दौड़ते हुए वह उनके नजदीक से गुज़रा तो उसे लगा उस लड़कियों के छोटे से झुण्ड में वह भी मौजूद है। एकाएक उसके कदम थम गये। लड़की ने भी उसको देख लिया था। उसे दौड़ते हुए यूं अचानक खड़ा होते देख बाकी लड़कियों का ध्यान उस पर गया। वह अचकचा गया और वहां से चलने को हुआ तो उसके कानों में किसी लड़की की आवाज पड़ी, " कभी किसी लड़की को नही देखा" बाकी खिलखिला उठीं। वह तुरंत वहां से भाग खड़ा हुआ।

जब दुबारा वह दौड़ते हुए उस जगह पहुंचा तो लड़कियाँ रस्सी कूद का खेल करती नजर आयीं।

दूसरे–तीसरे चक्कर में वह बुरी तरह से हांफने लगा था भागने की शक्ति उसमे और शेष नहीं रही थी। वह एक बेंच पर जाकर बैठ गया। वहां से उसे रस्सी कूदते लड़कियाँ भी दिख रहीं थी। कभी वह भी नजर आ जाती। उसके लिए लड़की का मिलना बिन मांगे छप्पर फाड़ कर मिल जाने जैसा अहसास था। आज का कोटा उसे हमेशा से कहीं ज्यादा मिल रहा था। वह उसे भरपूर निगाहों से देख रहा था। कभी–कभी उसकी दृष्टि भी उस पर पड़ जाती। वह निहाल हो जाता। उनके बीच काफी देर तक देखा–देखी का खेल चलता रहा। जब लड़कियाँ निकलने लगीं तो वह भी बेन्च से उठ गया। चन्दा सब लड़कियों से पीछे थी और उनसे कुछ दूरी बना कर चल रही थी। अविलंब को लगा ऐसा वह जानबूझ कर कर रही है। वह तेज कदमों से चलता उसके नजदीक पहुंच गया। बिलकुल समीप और धड़क रहे दिल की परवाह न करते हुए समस्त साहस संजो कर बोला, " कुड़िये तेरा नां की है" लड़की चिहुंक गई। उसने ऐसी उम्मीद ही नही की थी।

" नाम....!" अविलंब ने दोहराया। लड़की जवाब देने के बजाये भाग खड़ी हुई और अपनी सहेलियों संग जा मिली। वह हक्का–बक्का रह गया। हाथ आया कबूतर जैसे फुर्र से उड़नछूं हो जाये। उससे आगे बढ़ा नहीं गया। टांगे यूं कांपने लगीं जैसे जूड़ी दे कर बुखार आ जाये। उसने सोचा बाग में जाकर बैठ जाये। पर पीछे मुड़ कर देखा तो बाग में उसे मायूसी भरा माहौल छाया दिखा। वह घबरा गया और धीमे–धीमे कदमों से लड़कियों के पीछे हो लिया।

घर आ जाने पर बाकी लड़कियों को हाथ हिला कर लड़की ने उनसे विदा ली और बिना पीछे या दांये–बांये गर्दन घुमाये वह दरवाजे को धक्का देकर अंदर आलोप हो गई।

उसे विश्वास था उसके रखे नाम की चंदा जरुर पीछे मुड़ कर देखेगी। पर ऐसा नही हुआ।

' अभी उससे बात नही करनी चाहिऐ थी' उसने सोचा और दांयी ओर मुड़ते हुए पुलिया में जा कर एक पल के लिए खड़े होकर पीछे मुड़ कर देखा। लेकिन यहां से उसका घर नही दिखता था। सड़क में थोड़ा सा घुमाव था जिसने उस जगह को छिपा दिया था। वैसे भी पुलिया से उसका घर काफी दूरी पर था। वह मायूस सा सिर झुकाये आगे बढ़ गया। उसका मन बुरी तरह खिन्न हो गया था। अगर सुबह बाग न जाता तो किसी न किसी अर्थी के साथ जा कर उसने लड़की को देखने का अवसर नही खोना था।

' चलो कल सुबह बाग की सैर की जायेगी। वहाँ तो जरुर आयेगी, और हुआ भी यही। बाग में वह पहले से ही मौजूद थी। अन्दर दाखिल होते ही लड़की ने उसे देखा था। अविलंब को लगा था उसे देख वह सकपका गई है। वह जिधर खड़ी थी उधर न जाकर विपरीत दिशा की ओर चला गया। उसने यह भी एतियात रखा कि वह उसके सामने पड़ने से बचेगा। यही नही एक काम उसने और किया कि लड़कियों के जाने से पहले ही उसने बाग छोड़ दिया। उसने सोचा वह इस बारे में जरुर सोचेगी।

अब उसने कुछ सोचा या नहीं यह तो वह नहीं जान पाया। लेकिन दोपहर को चावला बाजार में वह रिक्शे में जाती उसे दिख गयी बस फिर क्या था उसने स्कूटी रिक्शे के पीछे लगा दी पूरी सतर्कता

बरतते हुए, कहीं लड़की की नजर उस पर न पड़ जाये।

रिक्शा एक महिला प्रसाधन की वस्तुओं को बेचने वाली दुकान पर रुका। अविलंब ने रिक्शे से कुछ दूरी पर स्कूटी खड़ी कर दी और उसके लौटने का इंतजार करने लगा। उसके मन में आया भी कि वह यहां उसका पीछा करके क्या कर लेगा। अगर अपने आप को दिखाना ही है तो देखा–देखी तो कई दिनों से चल रही है। पर उसका नतीजा क्या निकला। अभी तक उसका नाम तक तो जान नही पाया। आखिर वह क्या कर लेगा। उसे अपने ऊपर कोफ्त और खीज हो आयी। उसे तो अब तक अपना बना लेने की बात भी कर लेनी चाहिये थी। उस पर उदासी सी हावी हो आई। उसने मन ही मन फैसला किया। आज आर या पार की जंग करनी पड़ेगी। हालांकि वह क्या करेगा। उसे स्वयं नही पता था। लड़की रिक्शे में आकर बैठ गई थी। शायद उसने अभी कहीं और भी जाना होगा। तभी उसने रिक्शा नही छोड़ा था। रिक्शे वाले को उसके इतनी जल्दी वापिस लौटने का भान नहीं था। इसलिए वह बड़े इत्मीनान से खैनी बनाने लगा था। मौका दुरुस्त देख कर वह रिक्शे के करीब पहुंचा और लड़की को ' हैलो' कह कर अपनी ओर आकर्षित किया। लड़की एकदम से घबरा गई और अपने दांये–बांये देखा। कोई परिचित तो नही है आस–पास। अविलंब को उसकी घबराहट और सतर्कता पसन्द आयी।

मेरा नाम अविलंब लांबा और तुम्हारा नाम चंदा...! सही कहा ना । लड़की ने अपनी दोनों हथेलियों से अपना मुँह छिपा लिया।

" चंदा तुमसे कुछ बात करनी है।" अविलंब भी घबराहट के दौर से गुजर रहा था। टांगे बेतरह कांपने लगीं थी। लेकिन उसने हिम्मत नहीं छोड़ी थी।

" मेरा नाम पूनम है।"

अविलंब को विश्वास ही नही हुआ था कि लड़की ने अभी–अभी अपना नाम बताया है।

रिक्शे वाले ने दोनो को बात करते देखा तो वह निश्चिंत होकर खड़ा हो गया। लेकिन अविलंब को कुछ समझ नहीं आया कि आगे वह क्या बात करे। तो बस इतना ही कहा, " कल सुबह बाग मे मिलना अपनी सहेलियों के आने से पहले.... ।"

" भईया जी चलिऐ।" अविलंब की बात काटते हुए उसने रिक्शा वाले से कहा। अविलंब ठगा सा वहीं खड़ा रह गया।

उसे पूनम का व्यवहार बड़ा अजीब सा लगा। उसे कुछ तो कहना चाहिये था। लेकिन वह अगले दिन लड़कियों से आने से पहले ही पहुँच गया। न जाने उसे ऐसा लग रहा था। शायद पूनम न आये। फिर भी उसने पूरे धैर्य से उसके आने का इंतजार करना ठीक समझा। उसने मन ही मन सोचा जब तक लड़कियाँ बाग से चली नहीं जायेंगी तब तक वह रुका रहेगा। पर उसकी सोच को झुठलाते पूनम लड़कियों से पहले ही वहाँ पर पहुँच गई। लेकिन उसे ताज्जुब हुआ पूनम ने इस दौरान एक बार भी उसकी तरफ नहीं देखा।

बहरहाल उसने समय गँवाना व्यर्थ समझते हुए लपक कर अपने से कुछ दूरी पर स्थित वृहद आकार की शिव जी की मूर्ति के पास खड़ी पूनम के नज़दीक चला गया। अपने पास आया देख वह बौखला गई, " यहाँ से आप चले जाऐं...प्लीज। अभी मेरी फ्रेंड्स आती होंगी। यहां के किसी आदमी ने देख लिया तो पापा से कह देंगे।"

" पापा को जानते हैं।"

" मेरे पापा पंडित जी का काम करते हैं, यहाँ पर। आप जाईये।" वह रुआसी हो आयी थी।

" फिर कहां मिलोगी!" विस्मत स्वर में पूछा अविलंब ने।

" मुझे नहीं मालूम" कुपित होकर पूनम ने कहा वह लौट कर बेन्च पर जाकर बैठ गया कुछ देर बाद उसकी सहेलियां भी आ गईं। कुछ समय तक वह बैठा रहा फिर बाहर निकल कर आ गया। देखा–देखी तो बहुत हो गई। अब कुछ नया करना चाहता है, 'लेकिन हाथ ही नही धरने दे रही।' आखिर करे तो क्या करे।

आज उसे एक बात और पता चली। पूनम के पिता जी श्मशान घाट के पण्डा हैं। पण्डों के घर की लड़की को अपने घर घुसने भी नही दिया जायेगा। शादी तो कतई सम्भव नहीं। उसकी मां तो इन सब बातों को बहुत मानती हैं। फिर क्या पता लड़की के मां–बाप राजी होते भी हैं या नहीं। पीछे लौटना नामुमकिन है। वह पूनम के बगैर की कल्पना नहीं कर सकता। वह अपनी मां से बात करेगा, ' देखते हैं क्या होता है' सोचा उसने। लेकिन जल्द उसने अपना विचार बदल दिया। पहले अपने प्रेम को कोई मुकाम तो मिले। फिलहाल उसने स्वर्ग आश्रम के बाग में जाना नहीं छोड़ा। इतने दिनों में यह तो हो गया था कि पूनम उसे देख मुस्कुरा देती। अविलंब को भी इस बात का अहसास हो चला था कि उसकी चंदा फूंक–फूंक कर कदम रख रही है। वह किसी तरह का जोखिम नहीं उठाना चाहती। या यह भी हो सकता है कि वह उसे अच्छी तरह से समझ लेना चाहती हो। परख रही हो। वैसे सच क्या है , वही जानती है। लेकिन अविलंब ने आस नहीं छोड़ी। उसने भीष्म प्रतिज्ञा की तरह ठान लिया था एक न एक दिन वह उससे शादी करके ही रहेगा।

उसने हिम्मत नही हारी थी। बेसब्रा हुआ जा रहा था। जिसके चलते उससे कोई न कोई गलती हो जाती। एक बार वह उससे बात करने की कोशिश कर रहा था कि श्मशान स्थल के एक लड़के ने देख लिया था और पण्डे की लड़की को देख उसे लगा था कि अविलंब उसे तंग कर रहा है। यह देख नजदीक आ गया था। हालांकि लड़का पन्द्रह–सोलह साल का होगा। उसे देख अविलंब ने अपनी राह बदल दी थी। अब यह बात और है कि बाद के दिनों में उसी लड़के को अपना विश्वास पात्र बना लिया था। भले इसके लिए उसकी जेब गर्म करनी पड़ती थी। उसका नाम लाली था। जिसे उसने अभी तक सिर्फ अपना हमराज ही बनाया था।

एक दिन अविलंब ने लाली के माध्यम से पूनम को चिठ्ठी पहुँचाने का मन बनाया। पहले तो लाली राज़ी नहीं हुआ पर पैसे के दम ने उसे दुस्साहसी बना दिया और सीधे जाकर पूनम को पत्र दे आया। लाली के हाथ में पत्र देख वह भयभीत हो गई थी लेकिन लाली ने बुजुर्गों वाले भाव अपने चेहरे पर लाते हुए उसे आश्वस्त किया था। उसे कुछ पल लगे थे पत्र को हाथ से पकड़ने में।

" दीदी जवाब अभी देंगी कि बाद में आकर ले लूं" लाली ने कहा, तो उसने उसे चलता किया और कागज को हाथ में लेकर घर के अन्दर चली गई।

एक दिन गुजर गया। दो दिन हो गये। लेकिन पूनम ने कोई जवाब नहीं दिया। आखिर अविलंब ने उसे एक और पत्र भेजा। दो पंक्तियों का। तुमने जवाब नही दिया। इंतजार कर रहा हूं। या तुम्हारी तरफ से ना समझूं।

इस बार जवाब आया लेकिन दो दिन बाद। लिखा था,

' घर से बिना किसी काम के जाने नहीं दिया जाता। परसों मेरी फ्रेंड की शादी है। निरंकारी भवन में। मुझसे वहीं मिलियेगा।'

" लेकिन कैसे मिलूंगा। फोन नम्बर तो दिया नहीं।" लाली से कहा उसने।

" अपुन किस लिए है।" कहते हुए लाली ने आगे बढ़ कर अपनी कमीज के जेब को खोल दिया।

" बहुत निर्दयी हो इतना दिया, तब्बी मन नहीं भरा।"

" मन–माफिक माल भी तो मिल रहा है।"

लाली का पूनम को माल का सम्बोधन उसे बुरा तो लगा। लेकिन हंस कर रह गया। कुछ कह देने से बिदक गया तो पूनम और उसके बीच बना पुल टूटते देर नही लगेगी।

बहरहाल लाली ने नम्बर ला कर दे दिया और यह चेतावनी देना नहीं भूला, " फोन मिल जाने से इतराओ मत। मेरी मदद के बिना कुछ कर नही पाओगे। इस कहानी मे मेरा दी एण्ड नहीं हुआ।"

" ब्लैक मेल कर रहे हो।"

" जो मतलब निकाल लो।" हंसते हुए पास से गुजर रही अर्थी के साथ हो लिया लाली।

वैसे लाली ने उसके लिए बड़ी हिम्मत का काम किया है। कोई पता नही ऐसे लोगों के दिमागी फितूर का। अगर पूनम के बाप से कुछ भी कह दिया होता तो आज यहां दिखलाई न पड़ता।

वैसे पूनम की सहेलियों को शक तो हो गया था। क्या पता उन्हें पूनम ने बता दिया हो।

अविलंब का अंदाजा सही था। निरंकारी भवन के बाहर जब वह मिली तो उसके साथ सुबह बाग में टहलने वाली लड़कीयों में से एक लड़की उसके साथ थी। आते ही उसने जाने के बारे में पहले से ही चेता दिया कि वह ज्यादा देर नही रुक सकती। न जाने कितनी बातें अविलंब के अंदर खलबला रहीं थी जिन्हें वह पूनम से मिल कर कहना चाहता था लेकिन उसकी बन्दिशों वाली बात से वह निरुत्साहित हो गया। फिर भी धीरे से कहा, " तुमसे बातें तो खूब करनी हैं। लेकिन तुम्हारे पास टाईम ही नही है।" वह खामोश ही रही।

" तुमसे फोन पर बात.... ।"

" नहीं फोन मत करियेगा।" अविलंब की बात बीच में काटते हुए घबराहट से पूनम ने कहा।

" कुछ देर तो मेरे साथ रहो। तुम्हें नही मालुम एक–एक पल बिताये हैं, परसों से आज तक के इन्तजार में और तुम इसे हवा में उड़ा रही हो।" अविलंब की बात से पूनम के साथ आई लड़की खिलखिला

कर हंस पड़ी। अविलंब को नागवार गुजरी लड़की की बेतुकी हंसी। उसका पास में खड़े होना भी उसे अखर रहा था। वहां से उसे चले जाने के लिए कह सकने का दम भी उसमें नहीं था। बस एक टक पूनम को निहारने लगा।

" बोलिए क्या कहना है।" उतावलेपन से पूनम बोली। उसने हिम्मत संजो कर कहा, " जरा किनारे आओ.... ।" और सामने गली के अन्धेरे की तरफ बढ़ गया। पूनम भी उसके पीछे हो ली। लड़की उसके साथ ही बनी रही। लेकिन इस बार अविलंब ने उसे टोक कर वहीं रोक दिया। उसे बुरा लगा। पर रुकने के अलावा कोई और विकल्प भी नही था। वह गली के मुहाने दूसरे छोर पर खड़ी हो गई।

" लड़की को साथ लाने की क्या जरुरत थी।" पूनम ने कोई जवाब नही दिया दोनों गली के एक छोर पर जाकर खड़े हो गये।

" मुझे डर लग रहा है" वह असहज लग रही थी।

" डर गई तो कुछ नही कर पाओगी....देखो तुम्हें लेकर जो फीलिंग्स मेरे मन में है ऐसा ही तुम्हारे अन्दर है। इस बात को मानती हो।"

पूनम ने गर्दन झुका दी।

" सुनो....! मेरे लिए तुम मेरी जिन्दगी की सबसे सुन्दर और आकर्षक ईश्वर का दिया वरदान हो। तुम्हारे बगैर जीने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। बस एक वादा करो, मेरा साथ दोगी... ।" पूनम खामोश रही।

" बोलो...कुछ तो कहो।" मनुहार करते हुए कहा उसने। पूर्ववत सिर झुकाये उसने धीमे से ' जी' कहा।

मैं तुमसे इतनी जल्दी अलग होना तो नहीं चाहता। पर तुम्हारे डर को देखते हुए मेरे हौसले पस्त हो रहे हैं।" उसकी बात सुन वह पहली बार सहज–सुलभ हो कर मुस्कुरायी।

" चन्दा का मंदहास।" चिहुंक गई और गर्दन उठा कर अविलंब को ताका।

" तुम मेरी चंदा हो। मैं इसी नाम से तुम्हें पुकारुंगा।"

" अच्छा जी.... ।" कहते हुए हंस पड़ी और उसके पंक्तिवत जड़े दांत अंधेरे में मोतियों की तरह चमक उठे।

" मुझसे शादी करोगी।" अचानक ही अविलंब उससे पूछ बैठा। पूनम संकोच से अपने आप में सिमट गई। अविलंब ने झट से उसका हाथ पकड़ लिया। वह चौंक गई और अधीरता से हाथ छुड़ा कर उसके पास से भाग गई। वह सुनो, रुको, कहां जा रही हो। जैसे शब्द बोलता ही रह गया और वह यह गई...वो गई, उड़न छू हो गई। इतना जरुर हुआ कि भवन के अन्दर दाखिल होते हुए उसने पीछे मुड़ कर उसकी ओर देखा और हाथ हवा में हिला दिया। अविलंब के लिये यह बिलकुल अप्रत्याशित था। अब उसे विश्वास हो चला था कि पूनम के अन्दर भी उसके प्रति चाहत है। उसे इस बात पर यकीन हो चला था आखिर उसे पा लेने में वह सफल हो गया है। इस प्रेम प्रकरण में लाली के योगदान को नही भुलाया जा सकता है। उस दिन जब वह पूनम के पीछे–पीछे चलते हुए उससे बात करने की कोशिश में लगा हुआ था अगर लाली ना देखता तो उसका प्रेम अभी भी अधर में लटका होता और वह गैरों की अर्थी मे शामिल होकर राम नाम सत्य कर रहा होता।

लेकिन पूनम ने, उसे फोन करने पर जो कर्फ्यू लगा दिया था। उसे इस बात का बार–बार मलाल हो रहा था। पर इसे अपनी भलाई समझ कर उसने पूनम के सामने ज़िद न करके अपने सब्र का परिचय दिया था। पूनम जो कहती है उसमें जरुर गहराई होती है। वह तो खामखां में उतावला हुआ जाता है। बहरहाल वह अपने प्यार को लेकर आगे कौन सी योजना बनायेगा इस पर गम्भीरता से विचार करेगा। अब वह उससे कब और कैसे मिलेगा। यह एक अहम् मुद्दा था। अभी लाली की मदद के बिना उसका काम नही संवरने वाला। लाली ने भी अपने भाव बढ़ा दिए हैं। खैर...अभी सन्तोष करना पड़ेगा, ' उसने कहा तो है वह स्वयं मुझसे बात करेगी।' अभी धैर्य रखना चाहिए।

' जल्दी का काम शैतान का।' यह मन है जो धीरज नहीं रख पाता। दिमाग से सोचता है तो कहीं न कहीं अपने आपको न्याय देने की स्थिति में पाता है। बस उसे इंतजार करना है। यह अपने आपको दी जाने वाली तसल्लियां थी जो उसे अगला कदम उठाने के लिए मना कर रहीं थी। उसने डोर ऊपर वाले के हाथ में थमा दी थी। ऊपर वाला यानि खुदा। खुदा मतलब प्रेम। प्रेम मतलब उसकी चन्दा। अब चन्दा जैसा चाहेगी वैसा ही होगा। उसके अनुसार ही चलना पड़ेगा। वह दिन को रात कहेगी तो रात ही मानना पड़ेगा।

जो भी कराये प्यार वही कम है। अब तो यही होगा, और हुआ भी यही। एक दिन पूनम का फोन आया वह रेव मोती में मिले। समय और स्थान सब नियत कर दिया था। वह असमंजस में पड़ गया था। उसे पापा के साथ दुकान के लिए माल लेने नौघड़ा जाना था। अब क्या करे। उसे समझ नही आ रहा था। भईया दुकान पर थे। पापा के लिये अकेले माल लाना मुश्किल पड़ता। उसे बहाना बनाना पड़ा। उसका साक्षात्कार है। मनेसर से इण्टरव्यू लेने आये हैं। उसका जाना आवश्यक है। इसके आगे

कोई बोल ही नहीं सकता था। आखिर बेटे का भविष्य ज्यादा जरुरी है। मां को दुकान में बैठा कर भईया पापा संग गये थे। मां–बाप के सामने झूठ बोल कर रेव मोती जाना उसे ठीक नहीं लगा। आत्म ग्लानी से भर आया था उसका अन्तर। लेकिन फूड कोर्ट में पूनम के सामने सब कुछ फ़ना हो गया था। दो घण्टों में दोनों में खूब बातें हुईं। ज्यादातर टीवी में प्रचलित धारावाहिकों से लेकर फैशन, खान–पान फिर अपनी–अपनी पसन्द की बातें। उसकी सहेली का भी कोई पुरुष मित्र था। वह विवाहित था। इसके बावजूद सोनिया सब कुछ भूल कर उस पर आसक्त हुई पड़ी थी। शुरु–शुरु में पूनम ने उसे समझाया भी था। सोनिया ने उसकी तरफदारी करते हुए कहा था कि वह जल्द ही अपनी बीवी को छोड़ देगा फिर उससे शादी कर लेगा।

पुरुष का व्यवहार उसे संदिग्ध लगा था। उसे पूनम की सहेली पर तरस आया था। लेकिन उनके बारे में सोचते रहने या बातें करने से वह अपने लक्ष्य से दूर होता जा रहा था। पूनम मेज पर हाथ रखे आस–पास के माहौल का ज़ायजा ले रही थी। मौका देख अविलंब ने अपना हाथ उसके हाथ पर रख दिया। वह सकपका गई। लेकिन उसने हाथ छुड़ाने की कोई कोशिश नहीं की। अविलंब को ऐसा करना अच्छा लगा। फिर धीरे से पिछली बार कही गई बात दोहरा दी, " मुझसे शादी करोगी।"

पूनम ने गर्दन नीची कर ली। उसके पास कोई जवाब नहीं था। जानती थी उसके घर वाले इस शादी को नहीं राजी होंगे। फिर वह क्यों इतना आगे बढ़ गई। भविष्य का सोचा तो उसके दिल की धड़कने तेज हो गईं। उसके पापा मुर्दों का संस्कार करने का काम करते हैं। भला दूसरी बिरादरी के लोग क्यों ऐसे घर से रिश्ता जोड़ेंगे। यह एक गम्भीर मसला था जो उनके मध्य आकर खड़ा हो गया था।

रेस्त्रां में शुरु हुआ यह मुद्दा उनके दरम्यान बहुत दिनों तक पसरा रहा। आखिर एक चिठ्ठी में अविलंब ने भाग कर शादी करने के लिए लिखा था। तुरन्त पूनम का फोन आ गया था। जिसमें उसकी तरफ से बोला कम गया था और सिसकियां ज्यादा ली गईं थी।

" मोहब्बत के लिए कहा गया है प्रेम की डगर इतनी सहज नही होती है। इस पर चलने के लिए दम चाहिए।" अविलंब ने कहा था। उधर से आवाज आई थी " मैं हर इम्ताहन देने के लिऐ तैयार हूं। आग में तो कूद गईं हूं। अंजाम जो भी होगा देखा जायेगा।

एक बार अविलंब ने मां से इस बारे में घुमा–फिरा कर बात की थी। मां ने ठीक से कोई जवाब नहीं दिया था। वह और ज्यादा असमंजस में पड़ गया था।

यह तो तय था दोनों के परिवार वाले नहीं मानेंगे। अगर लड़की वाले मान भी गये तो अविलंब के मम्मी–पापा हर्गिज नही चाहेंगे कि जिस घर में रोटियां मुर्दों की चिताओं में सेकी जाती हैं ऐसे घर से सम्बन्ध बने।

अविलंब ने निश्चय कर लिया पूनम को भगा कर ही शादी करना संभव होगा। इसके लिये एक अदद नौकरी होना लाज़मी है। नहीं तो भाग कर खायेंगे क्या। रहेंगे कहां। नौकरी भी तो कहीं नहीं मिल रही। मन मसोस कर रह गया अविलंब।

फिल्मों में जैसा होता है। नायक का कोई दोस्त होता है उसका किसी पर्यटन स्थल में बंगला होता है। जो हमेशा खाली पड़ा रहता है। नायक–नायिका को जब वे विवाह करके आते हैं तो बंगले और कार की चाबी सौंप देता है। काश कुछ ऐसा ही होता और वह पूनम से शादी रचा कर ऊटी या गोवा में पड़ा होता। लेकिन वास्तविकता का सामना होते ही हसरतें अंगड़ाईयां लेते वहीं दम तोड़ बैठीं।

प्रेम के बाद प्रेम को आगाज़ तक पहुँचाने के लिये इतने खनज़खन उठाने पड़ेंगे इस बात का अहसास, उसे था ना पूनम को था। अविलंब के पास कोई नौकरी भी नहीं थी। होती तो आधी समस्या वैसे ही हल हो जाती। कई जगह आवेदन किया था पर कहीं से कोई जवाब ही नहीं आया था। दिन में दसियों बार ई–मेल देखा करता। अब तो उसे विश्वास हो चला था कि दुकान में बैठने के अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं है। ऐसा नहीं है कि उनकी कपड़ों की दुकान चलती न हो। दोपहर बाद ग्राहकी इतनी बढ़ जाती है कि नौकरों के अलावा काऊन्टर पर उसकी भी जरुरत पड़ती है। फिर उसके पापा कब तक काम करेंगे।

उनकी उम्र भी हो गई है।

अब उसने पढ़ाई की है तो उसका फायदा उठाना चाहता है। लेकिन नौकरियां इतनी आसानी से कहां मिलती हैं। नौकरी होती तो पूनम को भगा कर ले जाना था, वहीं पर। उसकी तो यही योजना थी। जब उनके घर कोई नन्हा मेहमान आ जाता तो दोनों ने अपने–अपने घर बता देना था। ऐसी स्थिति में दोनों के मम्मी–पापा कुछ न कर पाते। ऐसा तभी सम्भव हो पाता जब वह कहीं शहर के बाहर काम कर रहा होता। वैसे पूनम ने इशारों में कह दिया था वह उसका साथ नहीं छोड़ेगी। मरने के लिए कहेगी तो उससे भी पीछे नही हटेगी। अविलंब को भी लगा था। पूनम का साथ रहा तो वह हर कठिनाइयों से लड़ लेगा। बस पैसे कमाने का कोई जरिया होना चाहिए।

आखिर एक जगह से उसे बुलावा आगया। गुरुग्राम में एक आई टी इंडस्ट्रीज थी कम्पनी की बाजार में अच्छी साख थी। उनको कुछ नये लोग भी चाहिऐ थे जो पुराने अनुभवी लोगों के साथ समन्वय बना कर अपना बेहतर प्रदर्शन दे सकें।

जाने से पहले दोनों बाबा श्रीचन्द के गुरुद्वारे में मिले थे। दोनों ने कामयाबी के लिए अरदास की थी और शीश नवाये थे। बाहर निकल कर एक दूसरे के हाथ अपने हाथों में लेकर गुमसुम से खड़े हो गये थे। रात साढ़े नौ बजे की गाड़ी थी। अविलंब चलने लगा तो बस इतना ही कहा, " वहां से लौटने पर ही कोई न कोई स्टेप लूंगा। बस तुम पीछे न हटना।"

" जी...!" वैसे भी पूनम बहुत संक्षिप्त सी बातें करती थी। अविलंब भी बोलने के मामले में मितव्ययी था। लिहाज़ा दोनों जब मिलते तो उनमें मौन ही पसरा रहता। अविलंब कुछ कहने की कोशिश करता तो शब्द गले में अटक कर रह जाते। फिल्म, टीवी, उनके नायक–नायिका या फिर दोस्तों की बातें होती या अपने भविष्य को लेकर चिन्ता व्यक्त की जाती। यहां तक आते हुए अक्सर वे दोनों संजीदा हो जाते। ऐसे ही किसी अवसर पर जब एक रेस्त्रां में बैठे थे उनके मध्य ब्याह–शादी का जिक्र छिड़ गया था, " अगर मेरी शादी मम्मी पापा ने कहीं और कर दी....।" उस समय की चिन्ता करते हुए पूनम के आंसू आ गये थे। अविलंब ने उसे अपने बाहुपाश में ले लिया था और सिर पर हाथ फेरते हुए अस्फुट स्वर में बोला था, " ऐसा मौका आने से पहले हम लोग भाग जायेंगे।" गनीमत थी वे लोग रेस्तरां के ऊपरली मंजिल पर थे और वह कक्ष दोनों के अलावा पूरी तरह से खाली पड़ा था। सिवाए एक अड़चन के। सी सी टी वी कैमरों की ज़द में थे वे दोनों। जानते हुए भी उसने कैमरों की कोई परवाह नहीं की थी।

कदाचित अविलंब के लिए यह पहला मौका था जब उसने पूनम को अपने अंक में भींच लिया था। उसे लगा था रुई के फाहों की तरह पूनम की देह है। नर्म और गुदाज़। वह पुलकित हुआ जा रहा था। न जाने कब तक अपने से वह पूनम को चिपटाये रहता लेकिन ऐन मौके पर होटल का बेयरा ऊपर आ गया था। निःशब्द आहटों से वे दोनों झटके से एक दूसरे से अलग हुए थे। अविलंब ने उसे डांटा था। तो उसने सफाई देते हुए कोनों मे लगे हुए कैमरों के बारे में कहा था। अविलंब को तो पता था। पूनम कैमरों को लेकर अंजान थी। नौकर की बात सुन कर उसने लज्जा से गर्दन झुका ली थी। बाहर निकल कर उसने अविलंब से कहा भी था, " कहीं ये लोग बदनाम न कर दें।" अविलंब ने उसे सांत्वना दी थी।

" कुछ नहीं होगा। इस पर और ना सोचो..।" और चहल–पहल से गुलज़ार सड़क में उसने पूनम के बांये कंधे पर बांह फैला कर अपने से लगा लिया। सकपका कर पूनम ने अपने आपको अलग किया। जबकि रेस्तरां में किये गये उसके दुस्साहस ने उसके हौसलों को बढ़ावा दे दिया था। पूनम भी उसमें समाने को आतुर दिखी थी। लेकिन बाहर आते ही वह हिरनी की तरह डरी, सहमी और सजग दिखी थी। बहरहाल अविलंब के लिए वे लम्हें ऐतिहासिक बन गये थे। आज के दिन और तारीख को अपने ज़ेहन के दस्तावेज में दर्ज कर लिया था।

गुरुग्राम के लिय स्टेशन जाने से पहले अविलंब रेस्तरां वाले दृश्य को दोहराना चाहता था। गुरुद्वारे में संगत आ जा रही थी। अन्दर रहिरास साहब का पाठ चल रहा था। गली, जहां वे खड़े थे। पूरी तरह से आबाद थी सामने पंसारी के अलावा और भी दुकानें थी जो भीड़ से अटी पड़ीं थी। फिलहाल अपने मन्सूबे को टाल गया था और पूनम के हाथ को अपने हाथ में लेकर उसे सहलाते हुए अलग होगया था। इसी को ईश्वर का प्रशाद समझ कर उसने अपने आपको तसल्ली दी थी और इस विश्वास को मन में संजोये की इस बार वह जरुर सफल होगा, वहां से रुखसत होगया था।

कमाल की बात रही उसके विश्वास ने उसे असफल नही होने दिया। कम्पनी ने उसे साथ ही नियुक्तिपत्र भी पकड़ा दिया। वेतन भी अच्छा–खासा था पन्द्रह दिन के अन्दर अपनी सेवाएं भी प्रस्तुत कर देनी थी। जाहिर सी बात है सबसे पहले उसने यह खबर अपनी चंदा को सुनायी थी। पूनम ने बताया था उसके साक्षात्कार के समय वह गुरुद्वारे में बैठ कर सुखमनी साहब का पाठ करती रही थी। पूनम आजकल की और

लड़कियों की तरह नही थी। वह रब में पूरी श्रद्धा से विश्वास रखती थी। मतलब भर का फैशन भी करती थी लेकिन उसमें भी एक अभिजात्य और सादगी होती थी। फैशन, उसके मन में किसी दूसरे को रिझाने के लिए नहीं बल्कि अपने मन की सन्तुष्टी के लिये होता था। इसे अच्छे से समझता था, अविलंब।

नौकरी का मिलना उसके लिये एक साथ कई रास्ते खोल रहा था। घर से बाहर रहने का अवसर, मनचाह करने की छूट, किसी तरह की कोई बन्दिशें नहीं। और सब से बड़ा रास्ता पूनम को पाने का सपना उसका पूरा होने वाला था। उसने घर में झूठ बोला था कि उसकी नौकरी बैंगलोर में लगी है। जिसका साक्षात्कार दिल्ली में हुआ है। इसके पीछे सबसे बड़ा एक कारण तो यह था कि इतनी दूर कोई उससे मिलने नही आयेगा। दूसरे अपनी चंदा को लेकर जब भागेगा गलती से अगर पता भी चल जायेगा तो उन्हें ढूढ़ते दोनो के घर वाले बैंगलोर जायेंगे। इसीलिए वापिस आकर अपने मित्रों को भी उसने बैंगलोर का नाम ही बताया था। लाली के लिए उसने सोच रखा था उसकी जेब गर्म करता रहेगा तो वह अपना मुँह बन्द रखेगा। उसने पूरी योजना बना डाली थी पूनम को गुरुग्राम ले जाने की। वह इसके लिऐ पहले से ही तैयार थी। बस उसे उड़ाने भर की देर थी। जिसे समय और मौका देख कर कार्यान्वित करना था।

आखिर वो दिन भी आगया जब दोनों को भाग जाने का फैसला लेने की योजना को अन्तिम रुप देना था। उस दिन वे लोग पिण्ड कैनेडा में मिले थे।

दरअसल सुबह पूनम का फोन आया था। उसने बताया था किसी लड़के वालों से बात चली है। वे लोग उसे देखने महीने के आखिरी हफ्ते में आ रहे हैं। लड़का दिल्ली में श्मशान घाट मजनूं का टीला में काम करता है। वहां ऊपर की कमाई भी अच्छी हो जाती है।

जब पिण्ड कनाडा में पूनम पहुंची थी उसकी सूजी हुई आंखें देख समझ गया था कि उसकी चंदा बहुत रोई है। उसका दिल कचोटा गया था। वह अपनी चंदा को रोता हुआ तो देखना ही नही चाहता। उसने सोचा जो कुछ भी करना है उसे तुरन्त करना पड़ेगा। बल्कि उसे शादी करके, साथ लेकर ही जाना पड़ेगा। पूनम का अविवाहित जाना वहां के लोगों को संशय में डाल सकता है। उसे कुछ भी समझ नहीं आया आखिर वह इतनी जल्दी कैसे सारा प्रबन्ध करेगा। हालांकि पूनम को अपरोक्ष रुप में उसने दिलासा दी थी पर खुद तनावग्रस्त हो आया था। शादी करना कोई गुड्डे–गुड़िया का खेल नहीं है।

वहाँ से निकल कर अविलंब सीधे सुदेश के पास गया। उसे अपने प्यार की सारी कहानी बतायी। सुदेश ने अपना माथा पीट लिया। इतना कुछ हो गया दोनों में और पठ्ठा अब आकर बता रहा है। फिर भी उसने सारी बातें भुला कर उसकी मदद का आश्वासन दिया। दोस्त जो ठहरा। इतना ही नहीं उसके तनाव का सारा बोझ उतार कर सुदेश ने उसे घर भेजा।

घर आया तो वह अपने आपको काफी हल्का महसूस कर रहा था। कुछ देर अपने भतीजे के साथ खेला। फिर मां ने खाने के लिए सब को बुला लिया। भाई और पापा ने अविलंब से उसकी नौकरी, रहने–खाने के बारे में बात की तो मम्मी ने सुझाया कि वह कुछ दिनों के लिए साथ चली जायेगी। सुनते ही अविलंब बौखला गया, " नहीं–नहीं किसी को जाने की जरुरत नहीं है। मैं पीजी बन कर रहूंगा, दो जगह बात करके आया हूं।"

" तुम्हारी मम्मी ठीक कह रही हैं उसे तुम्हारे साथ भेज देंगे।" पापा ने कहा। अविलंब के माथे पर पसीना उतर आया।

" कोई बात नहीं पापा हम दो–तीन लड़के साथ रहेंगे। मम्मी वहां कहां रुकेगी लड़कों के बीच।"

" ठीक कह रहा है। कोई बच्चा थोड़े ही है। सम्भाल लेगा। बाद में अगर जरुरत समझेंगे तो घूम आना आप दोनों।" भाई ने अविलंब का पक्ष लेते हुए कहा, तो मम्मी–पापा दोनों चुप हो गये।

अविलंब ने भी इत्मीनान की सांस ली। वरना सारा खेल ही बिगड़ जाता मां के साथ चलने से।

रात सब सोने चले गये। अविलंब का बिस्तर ठीक रसोई घर के सामने बिछा हुआ था। लेटते हुए उसकी नजर रसोई संभालती मां पर

चली गई। दिन भर कैसे खटती रहती है मां सोचते हुए वह संवेदना से भीग गया आज उसी मां से छिपा कर शादी करने का कदम उठा रहा है। उसका जीवन सजाने में मां–बाप ने उसके लिए क्या कुछ नहीं किया। उसकी एक–एक ज़िद के आगे झुकते देखा है उनको। सबसे छोटा होने के कारण घर भर का लाडला था वह। आज भी वह किसी चीज की फर्माईश करता है। उसे तुरंत पूरा किया जाता है। आज वह बिना मां–बाप की मर्जी से शादी करने जा रहा है। जब उन्हें पता चलेगा तो सदमे में आ गये तब। फिर क्या करे सब कुछ बता दे कि लड़की का बाप श्मशान घाट में मरे हुओं का संस्कार करता है। उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था। एक मन कह रहा था जो हो रहा है होने दे। वरना अपनी चंदा से हाथ धो बैठेगा। दूसरा मन उसे उकसा रहा था। मां–बाप के प्रति अपने दायित्वों से मुँह मोड़ते हुए, उनकी इच्छा के विरुद्ध जाकर वह अपना घर संसार बसा रहा है। धिक्कार है ऐसी औलाद पर। एक झटके से वह बिस्तर से उठा और मां के पास चला गया।

मां ने बिना सिर उठाये पूछा, " क्या बात है...! बाहर जाना नहीं चाहता।"

" नहीं मम्मी दूसरी बात है।" मां की ओर देखते, कहा उसने।

" किसी लड़की का चक्कर है" मुस्कुराते हुए अविलंब को देख कर उसने पूछा।

" हां.... ।" संक्षिप्त सा जवाब।

" दिक्कत क्या है।"

" उसका बाप...!"

" मानेगा नहीं.....!"

" हो सकता है न मानें।"

" हम जा कर बात कर लेंगे।"

" ऐसी बात नही।" अविलंब बोला, उसका बाप मुर्दों का संस्कार करता है...पण्डा है।"

" आये–हाये...!" मम्मी के हाथ जहाँ के तहां रुक गये, उस दिन तू अपनी बात कर रहा था।"

मां से एक बार उसने बात की थी उसने ऐसी जगह पर शादी के लिए मना कर दिया था। हालांकि अविलंब ने अपना नाम नही लिया था। उसे लगा, उसने बिना मतलब मे मां से बातकर ली। नहीं बताना चाहिए था। जी चाहा अपना सिर धुन ले, " उसके बिना मैं नहीं रह सकता। इतना जान लो आप।" कह कर आ गया अपने बिस्तर पर। मां को घनघोर संकट में डाल गया था। अकेले मां के बस में नहीं था निर्णय लेना। पापा थे। बड़ा भाई था।

अपने बिस्तर पर जाते हुए मां ने कहा, " तेरे पापा को मनाना पड़ेगा...देखती हूं। तूं कोई गलत कदम न उठा लेना। बस इतना मान जाना।"

अविलंब को लगा अब वह अपनी चंदा को नहीं पा सकेगा। उसे मम्मी–पापा के निर्देशों पर चलना पड़ेगा। मां ने कह दिया कोई गलत कदम न उठाना। अब क्या करे! अविलंब को लगा सब कुछ खत्म हो गया है। लेकिन वह पूनम के बगैर नहीं रह पायेगा। अगर किसी के भी मां–बाप ने रोकना चाहा वह अपना क्रान्तिकारी कदम उठा कर रहेगा। चंदा को अपने जीवन में ला कर दिखाएगा। वह रात ठीक से सो नहीं पाया। यह जानकर कि अगला दिन उसकी परीक्षा के परिणाम का दिन है।

कब नींद आयी पता नही चला। सुबह टी वी में अमृतसर दरबार साहिब से गुरुबाणी का सीधा प्रसारण आ रहा था। उसकी आवाज से उसकी नींद टूटी। अभी देर नहीं हुई थी उठने में। नहा धोकर सब लोग जब नाश्ते के लिए, साथ बैठे तो मां ने पापा के सामने अविलंब की बात रखी। पापा तो बड़े खुश हुए। भाई भाभी को भी प्रसन्नता हुई पर जब लड़की के पिता के काम की बात आयी तो भाई का दृष्टिकोण बदल गया। पापा गुमसुम हो गये। सिर्फ भाभी को इसमें कोई बुराई नज़र नहीं आयी। उसने अपनी बात रखते हुए अपने देवर का पक्ष लिया। भाई को अपनी पत्नी के इस तरह बोलने से ऐतराज हुआ पर पापा ने उसे शान्त कर दिया। काफी देर तक मेज के गिर्द गम्भीर वार्तालाप चलता रहा। अन्ततः पापा ने हामी भर दी। किसी को विश्वास नही था पापा इतनी जल्दी मान जायेंगे। अब गेंद लड़की के पाले में चली गयी थी। लड़की वाले न राजी हुए तो सब कुछ गड़बड़ा जाना था। आखिर तय हुआ आते इतवार को लड़की के घर जाया जाये।

अविलंब ने पूनम से सारी बात बतायी तो वह सन्नाटे में आ गई। उसे मालूम था कि उसके पापा कतई नहीं मानेंगे। वह यह सोच कर डर गई थी कि उसकी प्रेम कहानी का भेद खुलते ही उसकी खैर नहीं।

पूनम तो मां तक को नहीं कह सकती थी। उसकी इतनी हिम्मत भी नहीं थी। अविलंब की बात और है। वह लड़का है। लड़की के लिए मुँह खोलने का मतलब लड़की निर्लज्ज और बेहया है। एक तो चोरी छिपे लड़के के चक्कर में पड़ी है। वही कम है क्या लड़की को अपराधनी

साबित करने के लिए।

उस पर यह बताना कि इतवार को लड़के वाले उनके घर आने वाले हैं। बस इतना जानती थी घर में बहुत बड़ा तूफान आने वाला है। वह अविलंब को मना कर देगी। घर से भाग सकती है लेकिन घर वालों का सामना नहीं कर सकती। जीते जी जलती चिता में झोंक देंगे उसे। हालाँकि आज तक उसके माँ–बाप ने मारना तो दूर कभी ऊंची आवाज में बात तक नही की थी, पूनम से। उसके पापा की जान बसती थी बेटी में। जब उन्हें यह सब पता चलेगा न जाने क्या बीतेगी उन पर। उनके लाड़–प्यार और विश्वास का खून किया है उसने। तड़प कर रह गई, ' हाय क्या करने जा रही हूं मैं... । भाग जाने पर भी तो यही होगा।' सोचा पूनम ने। उसे लगा न वह भाग पायेगी न अपने मम्मी–पापा को कुछ बता पायेगी। उसे अपने प्रेम को यहीं पर खत्म कर देना चाहिए। आखिर उसे क्या हो गया था कि उसने भागने का मन बना लिया। नहीं वह अपने मां–बाप की इज्ज़त पर दाग लगा कर अपना घर संसार हर्गिज नही बसायेगी। लेकिन तभी उसे अविलंब का ख्याल आया।

'अगर उसने कुछ कर लिया। हे रब्बा तू ही कोई रास्ता बता।'

आखिर पूनम ने यही फैसला लिया। वह अविलंब के मम्मी पापा के आने की खबर अपने घर पर नहीं देगी। जो होना होगा देखा जायेगा। यह तो तय है घर में उसकी करतूतों का पता चलने पर वह बख्शी नहीं जायेगी।

बहरहाल अविलंब के पापा ने चतुराई से काम लेते हुए पूनम का नाम कहीं पर नहीं आने दिया। यहां तक कि दोनों यानी कि पूनम और अविलंब एक दूसरे को जानते तक नही हैं। बस इतना जरुर कहा उन्होने कि, " अविलंब ने आपकी बेटी को यहां से गुजरते हुए देखा तो वह उसके लिए दीवाना हो गया। वो चाहता तो हम लोगों से यह बात छिपा कर चुपके–चुपके कोई न कोई बेजा हरकत कर देता आप तो लड़की वाले हो, जरा सोचिये आप पर क्या गुजरती... हम लोगों की फजीहत अलग से हो जानी थी।" बरामदे में खड़ी सुन रही पूनम के सिर से मानों मनों बोझ था जो अविलंब के पापा की वजह से हट गया। उसे साफ बचा दिया था।

" हम लोग इसी आस के साथ आये हैं कि आप अपनी बेटी का हाथ जरुर हमारे बेटे को देने के लिए विचार करेंगे। बाकी ऊपर वाले की जो मर्जी....यह तो संजोगों का खेल, अब एक दूसरे के

भाग में क्या लिखा, ईश्वर जाने। हम तो कोशिश कर सकते हैं।"

" भाई साहब आप शायद जानते नही होंगे। मैं पंडा हूं और मेरा पेशा श्मशान घाट पर मृतकों का संस्कार करना है।" पूनम के पापा ने कहा।

" भाई साहब हमें कोई एतराज नहीं है। आपकी बेटी हमारे घर हमारी बेटी बन कर रहेगी।"

पूनम के घर वालों ने सोचने के लिऐ समय मांगा था। इसके आगे अविलंब के पापा भी बेज़ार थे। अविलंब के मम्मी पापा चलने की औपचारिकता निभाते विदा हुए।

हालांकि उनको विश्वास था कि पूनम के पापा मान जाऐंगे। फिर न मानने का कोई ठोस कारण भी नहीं था। अविलंब के पापा के अनुसार फिर हुआ भी यही।

पूनम के पापा ने लड़के को देखने का विचार बनाया और यह संदेश फोन करके अविलंब के पापा को दिया। भला अविलंब के घर वालों को क्या उज्र हो सकता था। उन्होने हामी भर दी और नियत दिन पर बाबा श्रीचंद के गुरुद्वारे रस्मी तौर पर लड़के–लड़की की देखा–दिखायी सम्पन्न हुई। जबकि अविलंब और पूनम के लिऐ यह तो महज औपचारिकता थी। बहरहाल उसी दिन शादी की तारीख भी पक्की कर दी गई।

आते सोमवार को अविलंब ने अपनी नौकरी में उपस्थिति भी दर्ज करनी थी। लिहाज़ा वह शनिवार को गुरुग्राम के लिए निकल गया।

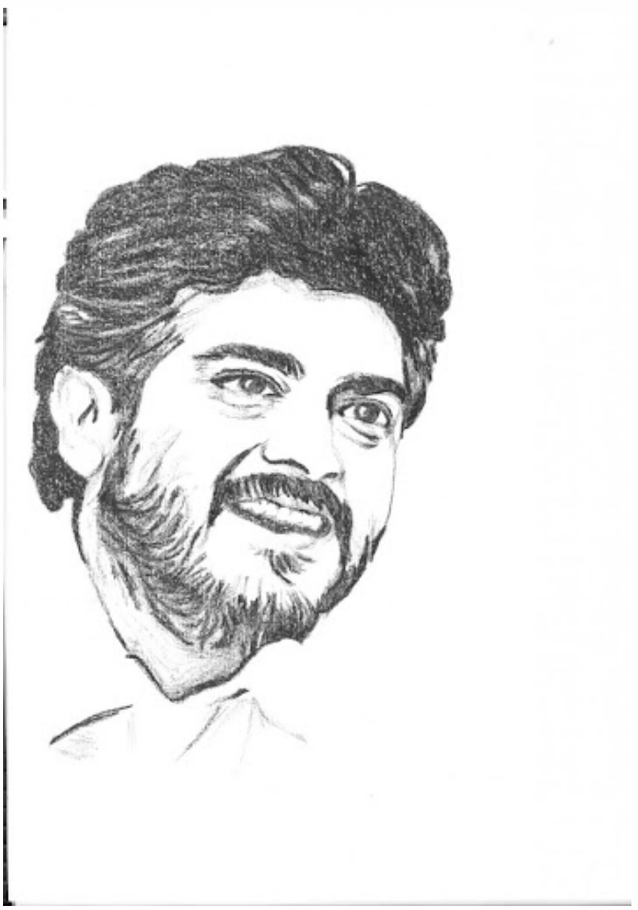

हालांकि जाते हुए वह अपनी चंदा से मिल कर जाना चाहता था। पर पूनम की मां ने इसके लिऐ मना कर दिया। अब विवाह तक कोई एक दूसरे से नहीं मिलेगा।

मन मसोस कर लड़के–लड़की ने फोन पर बातें करके अपनी हसरतें पूरी की। हालांकि पूनम ने इसके लिए माँ से इजाज़त ली कि अविलंब वीडियो पर बात करना चाहता है। माँ ने ज्यादा एतराज करना ठीक न समझते हुए पूनम को यह छूट दे दी। अगले महीने ही तो शादी थी।

दोनों के लिये यह किसी चमत्कार से कम नहीं था। आखिरकार दोनों के मां–बाप ने इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया था। हालांकि अविलंब के मम्मी–पापा के पास मना करने का बहुत बड़ा कारण था कि लड़की का बाप मुर्दों का अंतिम संस्कार करता है। वैसे उनकी बिरादरी वालों ने इस बात की तीखी आलोचना की थी। उनका कहना था आपको अपना कोई जोड़ नहीं मिला जो ऐसी जगह जाकर गिर पड़े। अब वह बेटे की खुशी देखते या मान मर्यादा। जो कुछ भी हुआ उसे भगवान का भाणा मान कर तसल्ली कर ली और एक दिन बच्चों की खुशगवार मौसम में शादी भी हो गई। पूनम अपने माँ–बाप की पराई होकर अपने ससुराल अपने घर आ गई।

थोड़े दिन पैतृक घर में रह कर अविलंब, पूनम को अपने साथ गुरुग्राम ले आया।

दोनों के दिन चांदी से और राते स्वर्ण सदृश गुजर रहीं थी। परिन्दे सरीखे समय ने उड़ते हुये उन दोनों को एक परी के सम्मान से सुशोभित किया।

बेटी को पाकर अविलंब की खुशी का कोई पारावार नहीं था। ऐसे समय में दोनों की मायें जच्चा–बच्चा की देखभाल के लिये आ गईं थीं। पूनम की माँ तो महीने भर पहले से आई हुई थी। लेकिन बच्ची की दादी समय पर ही पहुंची थी। जानती थी पूनम की देखभाल के लिये उसकी माँ तो पहले से ही आकर रह रही है। दो बुढ़ियां जाकर क्या करेंगी।

घर के अन्दर कदम रखते ही अविलंब की मां के मुँह से निकला था, " भाई को राखी बांधने वाली बहन आ गई।" दोनों के घरों में खुशियों का सैलाब उमड़ा पड़ा था।

ईश्वर का शुक्रिया अदा करने के लिए अविलंब की माँ ने घर पर अखण्ड पाठ रखवाया था। इस अवसर पर अविलंब और पूनम बच्ची के साथ कानपुर पहुंचे थे।

होली को बीते अभी कुछ दिन ही हुए थे कि पूरा संसार एक नई किस्म की बीमारी से ग्रसित हो उठा। यह बीमारी इतनी घातक थी कि एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को परस्पर बात–चीत करने, एक दूसरे के साथ आचार–व्यवहार, साथ उठने–बैठने से, वस्तुओं को छूने से हो रही थी। यदि कोई इंसान इस जानलेवा बीमारी का वाहक है तो उसके पहने हुए कपड़ों से, उसके साथ खाने–पीने की वस्तुओं से, उसके स्पर्श मात्र से दूसरे व्यक्ति को प्रभावित कर रही थी।

इस बीमारी का वायरस सीधे फेफड़ों को संक्रमित कर रह था जिससे लोगों की मौतें हो रहीं थी। इस घातक बीमारी का नाम कोरोना था। पूरे विश्व में कितनी ही जाने लोगों ने गवां दी थी। पूरे विश्व में लॉक डाऊन लगा दिया गया था। लोगों को घरों में कैदी बन कर रहने को विवश कर दिया था उस कोविड के कीड़े ने। विद्यालय बन्द हो गये थे। बाजार बन्द हो गये थे। पर्यटन स्थल बन्द हो गये थे। लोगों का आवागमन रुक गया था। रेल, हवाई और समुद्री जहाज, बसें सब के चक्के जाम हो गये थे। खाने–पीने की दुकानें, दवाईयों की दुकाने, सब्जी, फल

और दूध की दुकानें नियत समय के लिये खुल रहीं थीं। काम–काज सब ठप्प हो गये थे। मिलें, कारखाने, दफ्तर सब में ताला लग गया था। इतना बुरा वक्त आ गया था कि मजदूर कोई वाहन न मिलने से पैदल ही अपने गांवों की ओर रुखसत कर गये थे। इनमें से कईंयों ने रास्तों में ही दम तोड़ दिया था। मनुष्य जनित वायरस था कि दैवी आपदा। कुछ समझ में नही आता था। कारोबार बन्द होने से पैसों का आवागमन रुक गया था। देश का आर्थिक ढांचा चरमरा गया था। किसी प्रलय से कम नही था विश्व का इन परेशानियों से गुजरना। लोग त्राही–त्राही कर उठे थे। सन्तों–बाबाओं का कहना था संकट का यह दौर गुजर जाने के बाद युग परिवर्तन हो जायेगा। केवल सत्य ही बचेगा। सच ही शाश्वत है। क्या सच है क्या झूठ, कह सकना मुश्किल था। बस हकीकत यही थी कोरोना संक्रमित इंसान के बचने के अवसर बहुत अधिक नही थे। कब सांसे उखड़ जायें कोई पता नही था इसका।

अविलंब गुरुग्राम वापिस नहीं जा सका। जाने का सवाल ही नहीं था। काम धाम सब बन्द थे। वहाँ जाकर करता भी क्या। जैसे यहाँ वैसे वहाँ। किसी ने ऐसे दिन नहीं देखे थे। कभी प्लेग जैसी महामारी से गांव के गांव सफाचट्ट हो जाया करते थे। बचे हुए लोग दूसरे स्थान के लिए पलायन कर जाते थे। अब कहाँ जाते। देश नही पूरी दुनिया संक्रमित थी।

अठत्तर दिन के कड़े लाक डाऊन के बाद देश को कैद से मुक्ति मिली थी। पूरी सावधानियां बरतते लोगों ने बाहर निकलना शुरु किया था। लेकिन बहुत लोग नियमों की धज्जियां उड़ाते दिखे। एक दूसरे से परस्पर तय की दूरी को ताक में रख कर लोग बिना मास्क के मुँह से मुँह जोड़े दिखे। सामान्य दिनों की तरह ही चहल–पहल अपने चरम पर थी। खाने–पीने की दुकानों पर लोग ऐसे टूटे पड़े थे जैसे सदियों से भूखे हों। शराब की दुकानों पर लम्बी कतारें भ्रम उत्पन्न कर रहीं थी कि वाकई यह गांधी का देश है।

अविलंब अपने कार्यालय गया था उन्हे एक अदद लेपटॉप पकड़ा कर घर पर रह कर काम करो की ताकीद दे दी गई थी। पहले वह अकेले ही गया था पूनम और परी को घर पर ही छोड़ आया था। बाहर जाकर वहां के माहौल का जायजा लेना भी जरुरी था। अच्छा हुआ जो परिवार को नहीं लेकर गया था। उल्टे पैर वापिस ही आना पड़ता।

इस बात से घर के बाकी सदस्यों के सिर से तनाव का बोझ कम हो गया। लाक डाऊन खुलने का मतलब कोरोना खत्म नहीं हुआ

लोगों को कड़ाई से कोरोना से बचने के उपायों का पालन करना था। लेकिन हुआ इसके विपरीत। कोरोना की दूसरी लहर अपना भयानक रुप लेकर देश में तांडव मचाने लगी। इस बार के कोरोना की अलामतें पिछली बार से बिलकुल भिन्न थी। रोगी के शरीर में आक्सीजन की कमी होने लगी। पर्याप्त मात्रा में आक्सीजन मुहय्या न हो पाने से लोग धड़ाधड़ मरने लगे। यहां तक कि जो कभी नही हुआ वो मंजर श्मशान घाटों मे चिता के इंतजार में शवों को लोगों ने पड़े देखा। इतिहास मे ऐसा पहली बार हुआ कि शवों के साथ आये उनके परिजन को टोकन दिया गया।

हवाओं को काला बाजारी में पहली बार बिकते देखा। अस्पतालों मे इंसानियत का द्रौपदी की तरह चीर हरण होते दिखा। इतना कुछ हुआ जो पहले नही देखा गया भविष्य ने इसे इतिहास के काले पन्नों में दर्ज कर लिया।

ऐसे ही हैवानों के बीच में कुछ लोग ऐसे भी थे जो मानवता को शर्मशार होने से बचा रहे थे।

गुरुद्वारा प्रबंधन के कुछ नौजवान निःशुल्क आक्सीजन गैस के सिलेंडर

जरुरतमंदों को वितरित कर रहे थे। पहले यह कार्यक्रम गुरुद्वारा कीर्तनगढ़ मे सम्पन्न हुआ। फिर गैस का वितरण गुरुद्वारा रतन लाल नगर में शुरु किया गया। अविलंब रतन लाल नगर में अपनी सेवाएं दे रहा था। फिलहाल राज्य में सरकार ने लॉकडाऊन लगा दिया था।

हालांकि शहर में गैस की किल्लत कम नही हुई थी। कुछ एम्बुलेन्स वाले भी बहती गंगा में हाथ धो रहे थे। मरीज को ज़रा सी दूरी तक ले जाने के लिए मनमाने पैसे वसूल कर रहे थे। अविलंब इस जुगाड़ मे था का कि कहीं से उसे कोई पुरानी वैन मिल जाये तो वह उसे एम्बुलेंस में परिवर्तित करा ले और लोगों तक मुफ्त में ले जाने की सेवा शुरु कर दे। उसका यह सपना तो नही पूरा हो सका फिलहाल वह और लोगों के साथ जुड़ा आक्सीजन मुहय्या कराने में लगा रहा। इसी सिलसिले में उसे सुबह जल्दी गैस सिलेंडरों के इंतजाम के लिए कारखाने जाना था। उसकी नींद नही खुली। पूनम ने भी सोचा देर रात तक काम में लगा रहा था। नही उठा कोई बात नही। जब उठा तो नौ बज रहे थे। इस समय उसे आक्सीजन प्लाण्ट में होना चाहिये था। बिना नहाये धोये और खाये पिये बगैर वह फैक्ट्री चला गया। गुरुद्वारे तक माल पहुचाते दोपहर हो गई थी। अब तक उसे खाना न खाने की वजह से कमजोरी लग रही थी। उससे खड़े नही हुआ जा रहा था। थका हारा वह सेवादार के कमरे में जाकर चारपाई में लेट गया। पहले उसे ख्याल भी आया था कि कहीं पर जाकर चाय बिस्कुट खा ले। पर जाने की शक्ति उसमें शेष नही रह गई थी। चारपाई पर लेटते ही उसकी आंखे मूंदने लगी। कब उसकी आंख लग गई पता ही नही चला। बेतरह उसे हिलाया–डुलाया और जगाया गया तो उसकी नींद टूटी। लेकिन उसकी हालत ठीक नही थी। बूढ़े सेवादार की अनुभवी आंखों ने जल्दी भांप लिया कि अविलंब शारीरिक तौर पर ठीक नही है। उसने दूसरे नौजवानों से उसकी दशा बयान की तो आनन–फानन में उसे पास के डाक्टर के पास ले गये। लेकिन डाक्टर ने फोन में वीडियो कॉलिंग के माध्यम से अविलंब को दवाईयां लिख कर अपनी फीस चित्त की। अविलंब घर आ गया। खाना खाया दवाई ली तो शाम तक उसने अपने आपको हल्का पाया। उस दिन तो दुबारा नही निकला। अगली सुबह उसे फिर से फैक्ट्री जाकर माल उठा कर रतन लाल नगर पहुंचाना था।

बहरहाल आज वह नाश्ता लेकर निकला। लेकिन शाम तक उसकी तबीयत फिर खराब हो गई। उसके साथियों ने उसे कुछ दिनों के लिए आराम करने की सलाह देते चिकित्सक के पास भेज दिया।

डाक्टर ने उसकी पहले वाली दवाई की जगह नई दवाईयां लिख कर दीं। लेकिन अविलंब को दवाईंया खाते महसूस हुआ वह ठीक नहीं हो रहा है। दो–तीन दिनों तक उसकी हालत और बिगड़ गई। उसे अस्पताल ले जाया गया। लेकिन शहर के किसी अस्पताल में एक भी बिस्तर खाली नही मिला। अविलंब के पापा गुलजारी लाल रसूख वाले आदमी थे। कपड़ा व्यापार मण्डल के अध्यक्ष थे। लेकिन पद और रसूख कोई काम नहीं आया। लड़के का रोग बढ़ता ही जा रहा था। आक्सीजन की जरुरत पड़ी। मौके पर वो भी नहीं मिली। अपने पैसों से मुफ्त मे हवा देने वाला आखिर हवा के बगैर तड़पता हुआ दो–तीन दिन के खेल में अपनी दुनिया को अलविदा कह गया।

जिसने सुना, हैरान हुए बिना नही रहा, " अभी तो उसको ठीक–ठाक देखा था। अचानक ऐसा हो गया कि जीवन ही हार गया। लोगों के बीच में तरह–तरह की बातें उठ रहीं थी। घर पर कोहराम मचा हुआ था। सब को रोता देख परी भी रोती जा रही थी। आज उसे गोदी में उठा कर चुप कराने वाला कोई नही था। बाहर मोहल्ले के लोग गमगीन खड़े थे। जवान लड़के का इस तरह से चले जाना सबके दिलों को आहत कर गया था। कोई शख्स ऐसा नही था जिसकी आंखें गीली नहीं थी।

पूनम का घर संसार उजड़ गया था। पापा की परी के सिर से उसके पापा का साया उठ गया था। बूढ़े हो गये बाप के कन्धे जवान की अर्थी उठा रहे थे। कोई कस के चिल्लाया था, " राम नाम सत्य है।"

रोती बिलखती पूनम ने चौंक कर चिल्लाने वाले को देखा। भीड़ में उसका चेहरा कहीं नजर नही आया। अचानक पूनम को अविलंब की बात याद आयी, " मुझे जब भी विदा करो खिलखिलाते–मुस्कुराते चेहरे के साथ। तुम मेरी चन्दा हो। हंसती–मुस्कुराती, चन्दा का मंदहास" पूनम ने आंसू पोंछे, आगे बढ़ी, बांह हवा में हिलाते हुए खिलखिला उठी, " अब ठीक है न....!" औरतों की रुलाई थम गई। हैरानाकूल नजरों ने उसकी ओर देखा। उनमें से आगे खड़ी एक स्त्री बोल पड़ी, " बेचारी पगला गई है।"

.....

हरभजन सिंह मेहरोत्रा
390/3, शास्त्री नगर, कानपुर 208005,
मो. न. 7275001647

■■■■

कौशल किशोर
की कविताएं

वहां दुख ही दुख है

वहां दुख ही दुख है
बाढ़ का पानी
जैसे गांव, बस्ती और घर में फैल जाता है
दुख भी पसर गया है उसी तरह
जब कोई एक दूसरे से मिलता है
उनका दुख मिलता है
दुख ही आपस में बतियाता है
वह दर्द बन छलकता है
उनके आंसुओं से
मनुष्यता की चादर भीग गयी है
वे आसमान के नीचे थीं
समुद्र पार से आती घहराती घटाएं थीं
आंधी, तूफान, बिजली, बारिश, ओला सब सहती थीं
सिर पर छप्पर था, वह भी चूता था
जिन्दगी कठिन थी, पर वह थी
सुख नहीं था, पर उसकी आस थी
अब वे जहां थीं, वह अंधी सुरंग थी
इस अंधेरे में
एक दूसरे को पहचानना मुश्किल था
इससे बाहर आना और भी मुश्किल
बस दुख था, जो सबका सखा था
अंगुलियां थीं, जो मुट्ठी में बंधी थीं

उनके दुख की बात दुनिया में हो रही थी
बैठकें जारी थीं, हित साधे जा रहे थे
कुछ 'वेट एण्ड वॉच' की मुद्रा में थे
मतलब दुख बहस के बीच था
उस पर लिखी जा रही थीं कविताएं
जब दुख से दुख मिलता है
वह महज दुख नहीं रहता, पत्थर हो जाता है
उसमें गति होती है
होता है आवेग और त्वरण
वह दुख के गर्भ में पलता है
गर्भस्थ शिशु की तरह बढ़ता जाता है
पत्थर की रगड़ से प्रस्फुटित होती है चिनगारी
जंगल की व्यवस्था हो या हो व्यवस्था का जंगल
यही चिंगारी दावानल बन सकती है

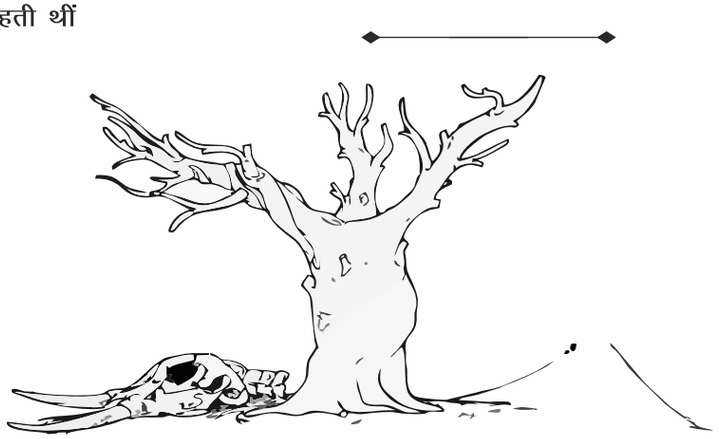

सिर्फ कमीज

कमीज जो शरीर पर रहती थी
सुरक्षा में पूरी मुस्तैद
अब खूंटी पर टंगी रहती है
जैसे यही उसका स्थाई निवास हो
वे हमारे अच्छे दिन थे
कमीज मेरी पहचान थी
वह इस कदर जुड़ी थी मुझसे
कि दूर से ही लोग पहचान लेते थे मुझे
मैं जहां जाता, कमीज मेरे साथ जाती
दफ्तर, सभा–सोसायटी, हाट–बाजार हर जगह
मैं ड्यूटी बजाता, मेरे साथ ड्यूटी पर यह भी होती
धरना, प्रदर्शन में शामिल होता, नारे लगाता
यह भी साथ होती
कमीज हर हफ्ते धुलती
धुलकर, कलफ व इस्त्री के बाद
जब यह मेरे बदन पर सवार होती
इसकी चमक से मेरा व्यक्तित्व
ताजे फूलों की तरह खिल उठता
लोग कहते भी कि अच्छे लग रहे हो
सुन्दर दिख रहे हो
इस तरह कमीज लोगों के बीच मेरी प्रतिष्ठा बढा देती
और मैं भी इसका पूरा सम्मान करता
भरपूर ख्याल रखता
इन दिनों देश लॉकडाउन में है
मेरे साथ कमीज भी लॉकडाउन में है
मैं घर में बन्द हूं
और उसका बाहर निकलना बन्द है
मतलब हमदोनों कैद में हैं
मेरे पास कोई काम नहीं
आराम ही आराम, और इस आराम में
रक्तचाप बढ़ गया है
यह मेरे अन्दर की बेचौनी है
जो कविता में व्यक्त हो रही है
कमीज खूंटी पर टंगी है
पानी की जगह धूल से नहा रही है
कह सकते हैं अपनी ड्यूटी से छुट्टी पर है
आराम फरमा रही है
यह बेजुबान है
जुबान होती तो जोर–जोर से कहती –
आराम हराम है

शून्य

नदी हो या पहाड़
जंगल हो या झरने
जिन्होंने नहीं बनाया
इन्हें रचने और गढ़ने में
जिनका नहीं कोई हाथ
वे डकार जा रहे पूरी नदी को
उन्होंने पहाड़ों के पेट में
भर दिया है इतना बारूद व विस्फोटक
कि उनके जिस्म का
कोई भी हिस्सा नहीं बचा है साबुत
वे हरे–भरे जंगल से नहीं
कंक्रीट के जंगल से प्यार करते हैं
और इसे ही
वे उगा रहे हैं धरती पर
यह जो हो रहा है
और वे जो कर रहे हैं
आखिरकार किस अधिकार से
जबकि कर्तव्य के खाते में
उनके हिस्से शून्य है
सिर्फ शून्य !

जया रावत

की कविताएं

एक सन्देश प्रेम के नाम

अभी तो मिले भी नहीं हो

रंग बदल रहे हो

मेरी नजर में ——

जबकि मैंने मान लिया है

तुम लिखे हो मेरी तकदीरों में

तकरीरों में??

मगर ये जादुई प्रपंच कैसा?

मेरी धुली पुछी भावना से कोई मेल नहीं इसका—

स्याह से चटक नारंगी हो जाना

मुझे मुखातिब देख फलक से अदृश्य हो जाना

जितना भी पढ़ा है खूब पढ़ा है

गहरायी से गढ़ा है

तभी तो यह सिर चढ़ा है

अपनी कलाकारी से मत भरमाओ

प्रेम का यह सरल—सहज खेल अदभुत है

—हाँ! मैं रंगो से प्रेम करने वाली "औरत " नहीं हूँ

मौन हूँ निशब्द हूँ एकनिष्ठ हूँ

अपनी सीमा रेखा में आबद्ध

चैतन्य उच्छ्वास मे असीमित

देह—विदेह मे कम्पित अपरिमित आस—प्यास लिये

गेहुएं रंग की प्रतिछाया

तुम्हारी ही नेह हूँ

सादगी भरा यह रंग सहजता से

मेरी खुशियों मे तब्दील हो जाता है

और भीतर ही भीतर इन्द्रधनुष सा खिंच जाता है

समय के फफोलों को बहुत नर्मी—गर्मी से सहलाता है

मैं तनाव उन्माद आवारगी लम्पटता का जामा नहीं पहनती

एक लता सी कनक कामिनी दरख्त से लिपट तब्दील हो जाती हूँ

यूँ नियति की प्रताड़ना ने खूब धूल चटायी है मुझे

तुम सक्षम हो

काँटों भरी देह में गुलाब खिलाने का ठौर है तुममे जर्जर नौका को ठिकाने से

अपने द्वार लगा सकते हो

तमाम भीड़ में––

प्रेम से पगे उस आकाश में –––

कुछ तो याद करो––एक बार दोहराओ–'–

जब मौन संवाद था भावनायेँ बोझिल तितर'–बितर मर्यादित सी–––

वो ईमानदार क्षण कितना प्रबल था

हम दोनों के बीच–––

कितना कुछ था

मैं पूछती हूँ––––––––?

कहाँ गयी वो––वो बात–––वो घात –––––'वो रात–––'

किसी और आँगन मे पसर गयी ???

मेरे सीमित सन्ताप मे लिपट गयी

तमाम दुनिया के मंसूबों से मुझे क्या काम?

मेरी सासों–– मेरी बाहों के ज्वार भाटे में उतरो–उसके उन्माद से खेलो–––

तुम्हारे भीतर की हलचल जरूर गवाही देगी–चुप कर मेरी हो रहेगी

मैं छिप कर प्रेम नहीं कर सकती

देखो न––समझो न–जानों न!

मैं कितनी खामोशी से प्रेम कर रही हूँ

मेरे मौन को पकड़ो

मेरे शब्द को भेदो

हवा में उछाल मेरा हाथ पकड़ो

हौसलों मे बन्द किताब तुम्हें पढ़नी ही होगी

हम एक दूसरे की आँखो के आकाश में छिप जायेंगे

मन का महकता लाल पलाश थाम लेंगे

दर्द सहेज कर तुम तक पहुंची हूँ

अभी तो सुबह का सपना भी बाकी है–'

"हवा की सरसरी मुंड़ेर पर बैठी चिरैया –––––

बड़ी स्फूर्ति से अपना घोंसला–होसला बना रही है और हौले हौले से गुनगुना रही है–––––

मेरे आँचल में सृजन छिपा है ––– ।"

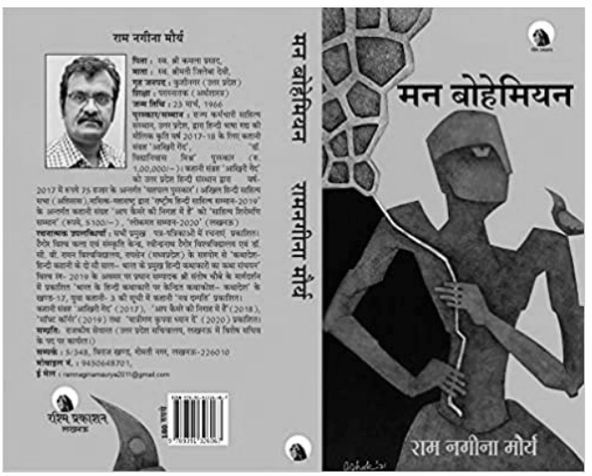

मन बोहेमियन

आँखें खोलती, संभावनाओं की कहानियाँ

पुस्तक समीक्षा —— विजय कुमार तिवारी

कहानीकार–श्री राम नगीना मौर्य

मूल्य–रु 180/–

कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी,आज कहानी विधा अपने चरमोत्कर्ष की ओर अग्रसर हो रही है या कम से कम उसकी यात्रा पहचानी जा रही है। साहित्य समाज का चेहरा दिखाता है और उसकी हर विधा इस पुनीत दायित्व संवहन में लगी हुई है। दुनिया भर में खूब लिखा जा रहा है। समाज की सारी जटिलतायें,सारे पराभव, सारे उत्कर्ष उभर रहे हैं। चिन्तन के केन्द्र में मनुष्य ही है और उसका सारा संघर्ष। रचनाकार अपनी अनुभूति को उकेरता है, चित्रित करता है और समाज को उसका आईना दिखाता है। हर साहित्यकार यही करता है, जन–सामान्य के भीतर कोई प्रकाश मूर्त होता है और उसके आलोक में स्थितियाँ सुलझने लगती हैं।

"मन बोहेमियन" हिन्दी कहानी की दुनिया के चर्चित कहानीकार श्री राम नगीना मौर्य की कहानियों का नवीनतम संग्रह है। उनके अनेक कहानी संग्रह छप चुके हैं और चर्चित रहे हैं। मौर्य जी को अनेक छोटे–बड़े पुरस्कार मिले हैं। मेरे लिए सुखद संयोग है, मैं उन्हें हृदय से बधाई देता हूँ, उन्होंने अपने तीन कहानी संग्रह–'यात्रीगण कृपया ध्यान दें', 'साफ्ट कार्नर' और 'मन बोहेमियन' भेजा है। ये तीनों कहानी संग्रह लखनऊ के 'रश्मि प्रकाशन' से प्रकाशित हुए हैं।

"अपनी बात" में श्री राम नगीना मौर्य जी ने विस्तार से अपनी कहानी विधा लेखन की चर्चा की है। उनके वक्तव्य से उनकी रचना प्रक्रिया को समझना सरल हो जाता है। कहानीकार ने स्वयं स्वीकार किया है कि 'अपनी बात' लिखना उनके लिए सरल नहीं होता, परन्तु मुझे लगता है, बहुत कम शब्दों में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण मनःस्थिति को खोलकर रख दिया है। यही तो मूल चिन्तन वस्तु है। उन्होंने चेखव को उद्धृत किया है। पूरी दुनिया में चेखव के विचार को स्वीकारा गया है। उनका मानना है,"जिन्दगी की सबसे मामूली बातों में सबसे बड़ी कहानियाँ छिपी होती हैं।" किसी भी बड़े रचनाकार के लिए ऐसी समझ का होना जरूरी है। मौर्य जी को भी हिन्दी कहानी के पाठक, आलोचक और समीक्षक उन महत्वपूर्ण कहानीकारों में जोड़ सकते हैं। इन कहानियों को पढ़ते, समझते हुए ऐसा लगता है कि उन्हें अपने समाज की, आसपास की दुनिया की बड़ी गहरी पकड़ है।

"मन बोहेमियन" में मौर्य जी की चौदह कहानियाँ हैं। संग्रह की अंतिम कहानी 'पचपन कहानियाँ' शायद सबसे छोटी कहानी है और निश्चित ही उनके किसी अकादमिक स्वानुभवों से जुड़ी है। 'गलतफहमी' और 'शिकार' दोनों कहानियाँ व्यक्तित्व के अलग–अलग पहलुओं को उजागर करती हैं।

'घड़ी' कहानी आज के तकनीकी युग में हमारे सम्बन्धों पर गहरी चोट करती है। रिश्ते–नातों को सहेजने की ललक तो है परन्तु बहुत से अन्य कारण हैं जो जुड़ने के लिए पहल करने नहीं देते। आपसी बातचीत में घर का सारा सम्बन्ध उजागर होता है और एक–दूसरे पर की गयी छींटाकशी वैसी ही है जैसे सचमुच घरों में होता ही है। 'शगुन' कहानी में पति–पत्नी की बातचीत देखिए। मौर्य जी की विशेषता है कि आपसी गुह्य बातें भी सर्व सामान्य के लिए प्रेरक हो जाती हैं।

मौर्य जी विद्वानों की बातों का अपनी कहानी में सुन्दर उपयोग करते हैं। यथा पाब्लो नेरुदा लिखे हैं, "प्रत्येक प्रतिभा के चारों तरफ ईर्ष्यालु लोगों का एक दायरा होता है।" कहानी में जितने ब्यौरे आये हैं, सबको स्मृति में धारण किये रहना सहज नहीं है। कहानियों में संवेदना और मनोविज्ञान बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उसी तरह बौद्धिकता और खिलन्दड़ापन उनकी कहानियों को जीवन्त बनाते हैं। मौर्य जी की कहानियाँ सहज ही आँखें खोलने को बाध्य करती हैं।

'प्रेमचंद के आगे तो निकले हिंदी

मुद्राराक्षस

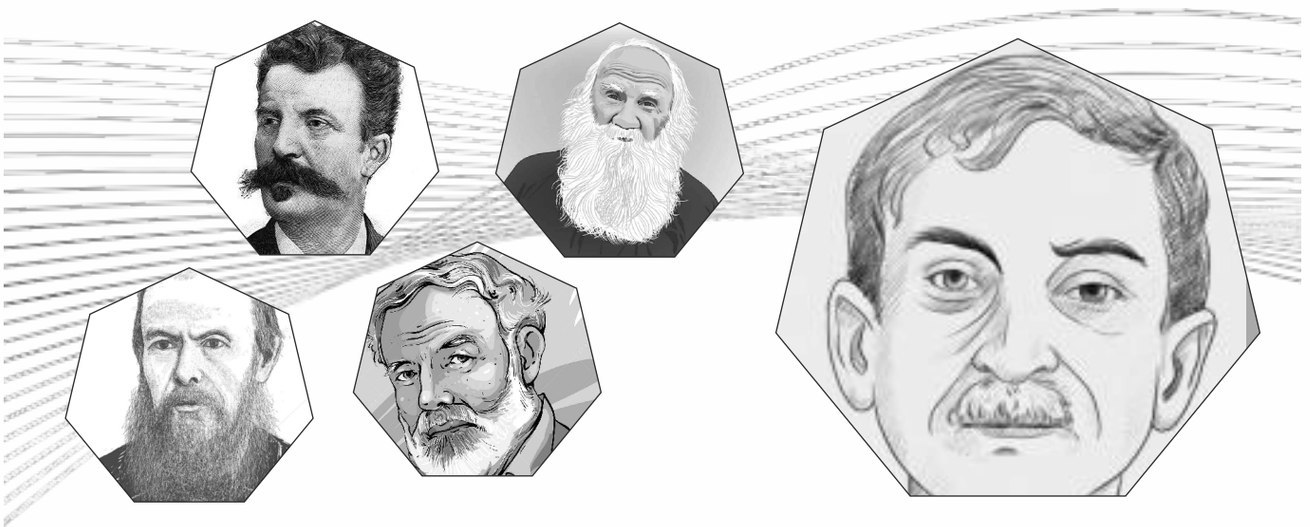

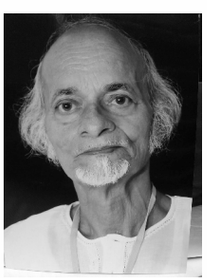

हिन्दी के उस लेखक की उलझन किसी को भी हैरानी में डाल सकती है जिसे अपनी भाषा में, जो एक सदी पहले लिखा जा रहा था या लिखा गया हो उसी के पीछे खड़े रहने को अभिशप्त होना पड़ा हो या जिसे लेखक होने से पहले यह मानकर चलना पड़े कि लगभग सौ साल पहले जो कुछ लिखा गया था वह उसकी सीमा रेखा लांघने की कोशिश कभी नहीं करेगा। आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि हिन्दी लेखक समुदाय यह मानकर चलता है कि हिन्दी साहित्य का अंतिम शब्द लिखा जा चुका है और वह अंतिम शब्द प्रेमचंद ने लिखा था। प्रेमचंद के बाद के हिंदी साहित्य को प्रेमचंद से पीछे ही रहना है। रहना होगा ही।

वैसे कोई भी यह सवाल पूछ सकता है कि हिन्दी में मोपासां, बाल्जाक, दास्तावोस्की, टॉलस्टाय, सात्र कामू, हेमिंग्वे, मार्केस क्यों नहीं हो सकते ? जवाब सिर्फ एक और बहुत साफ है–हिन्दी में प्रेमचंद हैं और अब उनके अलावा हिन्दी को न तो टॉलस्टाय या दास्तावोस्की की जरूरत है न किसी सात्र या मार्केस की जरूरत है। जिस तरह एक रूढ़िवादी हिन्दू के लिए दुनिया के ज्ञान विज्ञान का सर्वस्व ऋग्वेद में है और ऋग्वेद पढ़ लेने के बाद किसी भी आइंस्टाइन की जरूरत नहीं बचती। ठीक उसी तरह प्रेमचंद के होते इतिहास में अब और कोई साहित्य नहीं चाहिए।

यह कहा जा सकता है कि देश की किसी भी भाषा के पास प्रेमचंद नहीं है और यह भी एक गौरवशाली सच है कि दुनियां की अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन या स्पेनी जैसी भाषा की परवाह करने की जरूरत नहीं है क्योंकि उनमें से किसी भी भाषा के पास प्रेमचंद नहीं हैं। हिन्दी की यह धारणा बहुत मजबूत हो चुकी है कि प्रेमचंद के बाद दुनिया के साहित्य में कुछ नहीं है और कुछ हो यह दुस्साहस घोर पाप है। यह भी कम खराब बात नहीं है कि हिन्दी में उस फैज अहमद फैज की जन्मशती खासे जोशोखरोश से मनाई जा रही है, जिसने प्रेमचंद पर आलोचनात्मक टिप्पणियां की थीं। प्रेमचंद इत्तेफाक से हिन्दी ही नहीं उर्दू के भी आदि पुरुष थे बल्कि उनकी शुरुआत उर्दू भाषा के कथाकार के रूप में हुई थी। इसके बावजूद फैज ने प्रेमचंद का आदर न करते हुए उनकी आलोचना की और कमियां बतायीं। शायद इसलिए कि इस्लाम

देवी–देवता नहीं मानता।

एक जगह तो फैज ने थोड़ी कड़वी बात कही थी हकीकत एक जामे की चीज है और उसकी वजाहत वही शख्स कर सकता है जिसके जेहन में समाज का मजमुई तसव्वुर मौजूद हो और प्रेमचंद के जेहन में यह तसव्वुर मौजूद नहीं था। इसके अलावा जिंदगी के बहुत से ऐसे पहलू हैं जिनके मुताल्लिक न सिर्फ प्रेमचंद खामोश रहते हैं बल्कि दानिश्ता तौर पर उनसे चश्मपोशी कर लेते हैं। मैं समझता हूं वह और जो कुछ भी हो, हकीकतनिगार हर्गिज नहीं कहला सकते। औरत के मुताल्लिक प्रेमचंद का नजरिया यह है कि उनके नजदीक मिसाली औरत वो है जो किसी उसूल के लिए अपनी जान कुर्बान कर दे, ख्वाह वह उसूल गलत ही क्यों न हो ... मौजूदा हालात में यह कुर्बानी बहादुराना बुजदिलाना बात है।

सवाल यह है कि हिन्दी आखिर एक सदी पहले ठहरी क्यों? हिन्दी में यह महत्वाकांक्षा गर्हित क्यों कि कोई लेखक प्रेमचंद से आगे निकला या निकल पाए? व्यक्तिपूजक साहित्यिक सोच के अनुसार प्रेमचंद के बाद हिन्दी कथा साहित्य का आदर्श गंगा प्रसाद मिश्र हो सकते हैं और कथा साहित्य को गंगा प्रसाद मिश्र की प्रतियां बनकर ही रहना चाहिए। निस्संदेह हिन्दी में प्रेमचंद को लेकर कोई भी शंका लेखक को मकबूल फिदा हुसैन की स्थिति में पहुंचा सकती है। संयोग से यह स्थिति उर्दू में नहीं है जो कि उर्दू कथा साहित्य में भी पहली जगह प्रेमचंद की ही थी। प्रगतिशील लेखक संघ भारत में उर्दू लेखकों द्वारा ही शुरू हुआ था और उन्होंने प्रेमचंद को उसका अध्यक्ष बनाया था। लेकिन उर्दू ने प्रेमचंद को अंतिम शब्द नहीं माना और कथासाहित्य में विश्वस्तरीय, काम किया। दरअसल, प्रेमचंद से आगे बढ़कर उर्दू ने प्रेमचंद को एक प्रस्थान बिंदु की तरह जीवित रखा जबकि हिन्दी ने उन्हें पूज्य देवता का पत्थर बना दिया।

लेकिन मैं जानता हूं, देवपूजक समाज जिस ठहराव का अभ्यासी है उसके चलते प्रेमचंद की पड़ताल की कोशिश हिन्दी में स्वीकार्य नहीं हो सकती।

.....राष्ट्रीय सहारा से साभार

पुस्तक विथिका में इस दफा.....

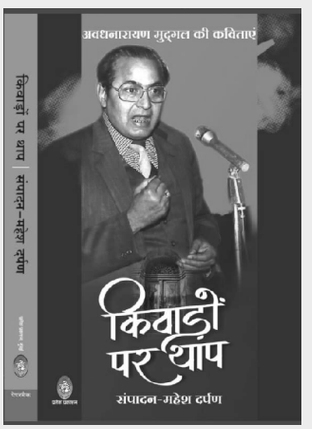

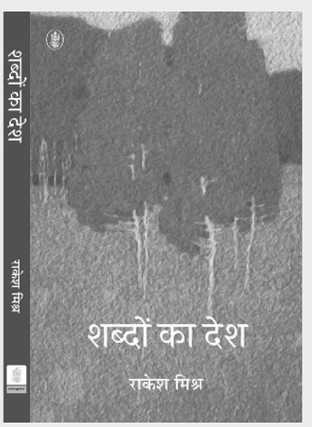

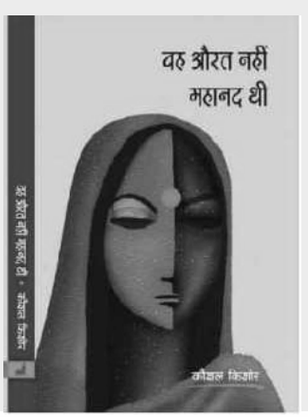

आलोक मिश्र

सबक

आलोक मिश्र का जन्म ग्राम लोहटा, पोस्ट चौखड़ा, जिला सिद्धार्थ नगर, उत्तर प्रदेश में एक गरीब किसान परिवार में हुआ। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से एम ए राजनीति विज्ञान से किया और फिर शिक्षाशास्त्र में एम एड, एम फिल। अभी वह एससीईआरटी, दिल्ली में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। साथ ही समसामयिक और शैक्षिक मुद्दों पर लेखन और कविता–कहानी लेखन कर रहे हैं, कुछ पत्र–पत्रिकाओं में समय–समय पर प्रकाशित भी हो चुकी हैं जैसे–जनसत्ता, निवाण टाइम्स, शिक्षा विमर्श, कदम, कर्मावक्श, किस्सा कोताह, परिकथा, मगहर, परिंदे, अनौपचारिका, वागर्थ, हंस, इन्द्रप्रस्थ भारती आदि। बोधि प्रकाशन से उनका कविता संग्रह 'मैं सीखता हूँ बच्चों से जीवन की भाषा' (2019) कविता संग्रह प्रकाशित हो चुका है। हाल ही में प्रलेक प्रकाशन से बाल कविता संग्रह 'क्यों तुम सा हो जाऊँ मैं' प्रकाशित हुआ।

यह शहर के बाहरी इलाके में बसी कालोनी का चॉल था। तीन तरफ से एक के बाद एक बने बारह कमरे आगे की तरफ दीवार से लगे लोहे के दरवाजे से घिरे थे। बीच के बड़े से आँगन जैसी जगह में बीचों–बीच खड़ा नीम इस चॉल के टिकाऊ दोस्त की तरह था क्योंकि यहाँ रहने वाले परिवार तो कुछ महीनों या साल में इसे छोड़ जाते थे पर यह यहीं खड़े–खड़े इसका साथ देता और हर सुख–दुख का गवाह बनता रहता। यहाँ हर कमरे में ही कोई न कोई गरीब परिवार किराये पर रहते थे। सभी परिवारों के लिए मात्र दो साझे शौचालय और गुसलखाने थे। जहाँ सुबह अपनी बारी आने के लिए लाइन में लगना हर किसी की दिनचर्या का पहला काम होता। पर जैसा कि खुशी का अमीरी या गरीबी से कोई सीधा रिश्ता नहीं है, इस चॉल के लोग अभावों में भी सुखी ही थे।

इसी चॉल के एक कमरे में माया अपने पति रमेश के साथ रहती थी। पिछले पाँच साल से रह रहे माया और रमेश इस समय चाल के सबसे पुराने किरायेदार थे। इन दोनों का मिलनसार स्वभाव चाल के सभी परिवारों को भाता था। मकान मालकिन ने भी इसी वजह से उन्हें इतने समय से यहाँ रहने दिया था वरना तो वह दो साल से ज्यादा किसी को वहाँ टिकने न देती थी। कहती कि, 'पुराने किरायेदार अपने आप को मकान मालिक समझने लगते हैं। पर माया और रमेश की बात अलग है। इनका सरल सहज स्वभाव मुझे पसंद है।' माया का चॉल में रहने वाली अन्य औरतों से भी बहनों सा रिश्ता था। पर उसके निजी जिंदगी में एक फास थी जो उसे रह रह के दर्द देती थी। ब्याह कर आये दस बरस हो चुके थे और उसकी गोद सूनी ही थी। गाँव से सास–ससुर और बाकी लोगों का रमेश पर दूसरी शादी के लिये बहुत दबाव था। रमेश ने कभी खुलकर खुद तो कुछ न कहा पर जबसे चॉल में सोना और उसकी बूढ़ी माँ रहने आईं थीं वह धीरे– धीरे रंग बदलने लगा था।

दरअसल सोना की बहन रूपा और जीजा नन्हे पहले से ही यहाँ रहते थे। रूपा जबसे गर्भवती हुई थी तभी से नन्हे के पीछे पड़ी हुई थी कि इसी शहर में दूसरी जगह किराये पर रह रही उसकी बूढ़ी माँ और बहन को यहीं रहने को बुला लें। इससे जहाँ खुद उसे इस समय में काम करने से मुक्ति मिल जाती वहीं बेसहारा बहन और माँ को भी कुछ सहारा मिल जाता। 'आखिर जमाने में आग लगी हुई है। एक बूढ़ी के साथ रह रही जवान बेटी को आसपास के मनचले अपने लिए खुला न्यौता मानते हैं। माँ भी कब तक मजदूरी करती रहेगी.. पर एक कमरे के घर में उन्हें कैसे साथ रखेंगे' यही सब सोचकर रूपा नन्हे पर ज्यादा जोर न चला पाती। संयोग से इसी बीच चॉल का एक परिवार कमरा खाली कर गाँव चला गया। रूपा की तो मुराद पूरी हो गई। उसने नन्हे को राजी कर लिया। दो–तीन दिन के अंदर ही सोना और उसकी माँ ने उस कमरे में नये किरायेदार के रूप में डेरा जमा लिया।

सोना अभी अठारह की हुई थी। वह अपने नाम की तरह ही दिखती थी। उसके साँवले व कसे बदन, सुन्दर नैन–नक्श, साथ ही हरदम चहकते रहने वाले स्वभाव ने जल्दी ही चॉल में उसे सबकी नजर में ला दिया। जवान जहाँ उसे नजरें छुपा कर देखते वहीं नव ब्याहता

औरतें रश्क खातीं। कस्तूरी लिये हिरनी की भांति वह चॉल को अपनी महक से मदहोश किये जा रही थी। नन्हे अपनी सास और साली का खूब ख्याल रखता। कुछ दिन के अंदर ही वह उनके लिये नये कपड़े, घरेलू प्रयोग के समान सब खरीद लाया। बूढ़ी सास उसे आशीर्वाद देते न थकती। कहती 'नन्हे मेरा दामाद नहीं बेटा है। इस बुढ़ापे में अब फैक्ट्री में काम न होता था। अब बस सोना के हाथ पीले हो जायें। मेरी जिंदगी तो समझो कट ही गई।'

रमेश सुबह–सुबह ही रेहड़ी लेकर गली–गली सब्जी बेचने निकलता। दोपहर में घर आकर आराम करता, शाम को मंडी जाकर ताजी सब्जियां लाता और फिर रोज रात को अलग–अलग साप्ताहिक बाजारों में रेहड़ी लगाता। माया कमरे की साफ सफाई करने, खाना बनाने जैसे घर–गृहस्थी के सभी काम करती और फिर रेहड़ी पर करीने से सब्जियां लगवाती। समय मिलने पर चॉल की औरतों से गप्पे मारती। यही दिनचर्या थी उसकी। पर इधर एक–आध औरतों ने जबसे उसके कान भरे कि 'रमेश सोना को चुपके–चुपके निहारता है और सोना भी उसे देखकर मुस्कुराती है' उसका मन खिन्न हो गया। वह खुद नज़र रखने लगी और उसे भी ऐसा ही आभास हुआ। उसने घुमा–फिराकर सोना की माँ से उसका ब्याह करा देने की बात कही। रमेश को भी जब तब माया ने उसकी पोल पट्टी पता होने की बात कहकर लताड़ा। पर कोई असर होता हुआ दिखाई न दिया।

इसी बीच गाँव से माया के सास–ससुर शहर घूमने के मकसद से एक महीने के लिये आकर यहीं जम गये। कमरा एक ही था सो दिन में ज्यादातर समय वे नीम के नीचे आग जलाकर हाथ सेकते हुए बैठे रहते या बाहर ही खाट बिछा धूप का आनंद लेते। माया की सास और सोना की माँ दोनों हमउम्र थीं। वे घंटों एक साथ धूप में बैठी बातें करतीं। सोना की माँ जहाँ जवान बेटी के ब्याह और अपने बेसहारा–गरीब होने की बात कहकर चिंतित हो जाती वहीं सोना की सास अलग ही सुर छेड़ती और कहती, 'अब तक पोते–पोतियों का मुँह न दिखाया भगवान ने। इस माया मनहूसी से एक बच्चा न दिया गया घर खानदान के लिये।' सोना के माँ की स्थिति को समझते हुये उस पर डोरे डालने के लिये एक दिन माया की सास ने ऐसे ही बात उछाली 'लड़की मिले तो मैं फ्री में रमेश का दूसरा ब्याह करा दूँ। इस माया को तो गाँव में कर देते, हमारी सेवा पानी करती। नयी बहू के साथ रमेश यहाँ रहता।... राज करेगी ऐसी लड़की, आखिर कोई कमी नहीं है हमारे रमेश को। अच्छा कमा लेता है। यहीं एक कमरे में रह रहे हैं वरना तो गाँव में चार कमरों का घर, दो भाइयों पर दस बीघा जमीन, ट्रैक्टर, बाइक सब है।'

ये बात पूरी निशाने पर लगी थी। सोना की माँ को ये रिश्ता सोना के लिये जम रहा था। 'क्या हुआ अगर सोना अठारह की और रमेश अट्ठाईस का है। आखिर मरद जात है बड़ा ही होना चाहिये। कहाँ ढूँढती फिरूँगी रिश्ता, फिर कौन ब्याहेगा गरीब की बेटी मुफ्त में।' ऐसा सोचते हुए उसने माया की सास से खुलकर बात छेड़ दी। दोनों ने आपस में हामी भर ली। पर तूफान आना तो अभी बाकी था।

पूरे चॉल में अंदर ही अंदर बात ऐसे गूँजने लगी जैसे कोई बहुत बड़ा रहस्य लोगों को पता चल गया हो पर साथ ही किसी एक से इसे उन्हें छिपाना भी हो। औरतें आपस में फुसफुसातीं... 'हमें तो पहले से ही पता था। जबसे ये माँ बेटी आईं हैं तभी से इनकी नीयत ठीक न लग रही थी। बेचारी सीधी–सादी माया ही मिली थी इन डायनों को।' पुरुष औरतों को झिड़कते... 'चुप रहो। दूसरे के घर के मामले में काहे टाँग अड़ाना।' अक्सर खुद से जुड़ी बात सबसे बाद में पता चलती है। माया को खबर तभी लगी जब सास ने ससुर और बेटे की उपस्थिति में दूसरी शादी की चर्चा छेड़ी। माया को धक्का तो लगा पर उसने इस उम्मीद से रमेश की ओर देखा कि वही इस बात पर बिदक जाएगा। पर रमेश की तो जैसे मन की बात पूरी हो रही हो। तिरछी मुस्कान बिखेरते और शर्माते हुए उसने कहा 'अम्मा और बाबूजी जैसा आपको ठीक लगे करो।' माया ठगी सी रह गई । 'जिस पति के लिए मैं दस सालों से तन–मन से समर्पित रही, सुख–दुख सब साथ झेला वह बिना उसके बारे में सोचे कैसे हाँ कर सकता है।' माया अब चुप नहीं रह सकती थी।

उसने कमरे से बाहर आकर सोना के लिए गन्दी गालियाँ निकालते हुए दहाड़ना शुरू किया। 'इस बेहया को मैं पहले दिन ही समझ गयी थी। ये और इसकी चुड़ैल माँ तभी से मेरे घर–परिवार पर दाँत गड़ाये बैठी हैं। अरे इतनी ही जवानी नहीं संभल रही तो करमजली जा रोड पर खड़ी हो जा...बहुत मिलेंगे। पर मेरा घर बक्श।' चॉल के सभी परिवार कमरों से बाहर निकलकर आधे झुके नीम के नीचे आ जमे।

माया दहाड़े जा रही थी। औरतें उसे देखकर सहमति में सिर हिलातीं तो मर्द कहते 'चलो कोई बात नहीं घर का मामला घर में सुलझा लो।' पर अब रमेश की माँ भी यह सोचकर कि बात खुल ही रही है तो रंग में आ गई। बोली, 'अरे करमजली, मनहूसी दस बरस में

हमारे रमेश का वंश बेल तो बढ़ा न सकी और बकवास करती है। जबसे आई है तूने हमें दियो ही क्या है? कलंकिनी तेरे आने के हफ्ते भर में मेरे छोटे का एक्सीडेंट भयो और चल बसो। तू मनहूसी है मनहूसी। अब देखती हूँ रमेश का दूसरा ब्याह कौन रोके है। बुला ले अपने विधवा माँ को। सबको बताऊंगी कि तू हिजड़ी है। बच्चा न जन सके।' माया ने रोते हुए कुछ कहना चाहा कि रमेश ने तरेरते हुए उसे कमरे के अंदर खींचकर दरवाजा बंद कर दिया। काफी देर तक रोने की आवाज बाहर आती रही। उसकी सास बाहर अपने फैसले को सही बताते हुए अपना पक्ष लोगों को समझाती रही। सोना और उसकी माँ अंदर ही दुबकी रहीं जैसे साँस भी न ले रही हों।

अब तो रमेश और सोना की शादी की बात खुलेआम चलने लगी। तारीख तय हुई, जरूरी तैयारियां भी फटाफट पूरी होने लगीं। इस बीच खबर मिलने पर माया की माँ जरूर समझाने के लिए गाँव से आई। रोई– गिड़गिड़ाई पर रमेश और उसके घर वालों पर कोई असर न हुआ। उलटे उसे धमकाकर चुप करा दिया गया कि माँ बेटी चुपचाप इस फैसले को मान लें नहीं तो माया को पीहर की रोटी ही तोड़नी पड़ेगी। बूढ़ी माँ, बेटी को भाग्य का लेखा मानने और सब कुछ भगवान पर छोड़ देने की सीख देकर वापस चली गई।

इधर शादी को खरीद फरोख्त होती, सोना के लिये कपड़े, गहने खरीदे जाते उधर माया की उदासी बढ़ती जाती। रमेश तो पूरा बदल चुका था। जब सब्जियां बेचने नहीं जाता तब कमरे के बजाय बाहर नीम के नीचे आग जलाये बैठा रहता। माया को तो जैसे पहचानता ही नहीं। सोना को चुपके–चुपके ताड़ता, नजरें मिलने पर मुस्कुराता। उसकी मुस्कान खत्म भी न होने पाती कि कोई न कोई माया को इशारा करके इसकी खबर दे देता। दो–चार बार तो उसने रमेश को धिक्कारा पर अब वह कुछ न बोलती, सिर्फ उसकी आँखे भर आतीं और अपने भाग्य को कोसती। शादी में पाँच दिन बचे थे। रमेश ने माया को गाँव चलने और वहीं ससुराल में रहने का फरमान जारी कर दिया। दो घंटे में तैयार होने को कहकर कहीं चला गया। माया रोते हुए सामान बाँधने लगी। चॉल में खबर मिलते ही कुछ औरतें उससे मिलने आने लगीं और दिलासा देने लगीं। जिन्हें खबर नहीं मिली उनसे माया खुद जा–जाकर मिल रही थी। बस रूपा और सोना के कमरे की ओर वह नहीं गयी।

रमेश माया को गाँव करके दो दिन में ही लौट आया। मंदिर में धूमधाम से शादी हो गयी। दुल्हन बनी, सजी– संवरी सोना किसी अप्सरा सी दिखती। खनकती चूड़ियों, बजती पायल, सितारों वाली साड़ी और महकते इत्र के साथ वह सारे चॉल को अपने होने से अभिभूत किये जा रही थी। रमेश भी अठारह बरस के बाँकुरे प्रेमी सा उसके आगे पीछे उसकी परवाह किये घूमता रहता। शादी के दो दिन बाद ही माँ बाप को उसने गाँव भेज दिया था मानो वे उसकी नयी जिंदगी का आनंद लेने में बाधक हो। आखिर एक ही कमरा था दिक्कत तो थी ही । वह सब्जी बेचने बहुत थोड़े समय के लिये जाता, ज्यादा समय कमरे में ही बंद रहता। अब दोनों आजाद पंछी के जोड़े की तरह उन्मुक्त हो खुले आकाश में उड़ रहे थे। काम से जल्दी वापस आकर रमेश सोना को लेकर बाजार भी घूमने जाता। मिठाई, आइसक्रीम और मनपसंद चीजें सोना को खिलाता। यहाँ तक की जीवन में पहली बार

सिनेमा के मंहगे टिकट खरीदकर उसने सोना को फिल्म भी दिखाया।

लेकिन सीमित कमाई में यह सब कब तक चलता। इससे पहले की पैसे कि तंगी ज्यादा बढ़ जाये रमेश सचेत होने लगा। शादी के एक–डेढ़ महीने बाद वह अब खर्च में सावधानी बरतने लगा। कभी–कभी याद करता कि कैसे माया उसे बिल्कुल भी फालतू खर्च न करने देती थी। पाई– पाई जोड़कर पैसे बचाती थी। पर क्या फायदा? ज्यादातर बचाया हुआ पैसा शादी ब्याह के खर्चे और खरीददारी में चला गया। सोना का खुद का खर्चा इतना ज्यादा था ही ऊपर से वो अपनी माँ और बहन पर भी दिल खोलकर लुटाती। रमेश को अब उसकी इन आदतों पर कोफ़्त होने लगी। एक दिन उसने गुस्से में इसके लिये सोना को झिड़का भी। मगर सोना तुरंत माँ को शिकायत कर आई। सासू माँ ने आकर तुरंत ताना मारा, 'फूल सी बच्ची तुम्हें दुख सहने के लिए नहीं दी है। अपनी उम्र देखो और उसकी।...आइंदा मेरी बिटिया को दुख मत देना। तुम्हारा बंश यही बढ़ायेगी।' रमेश कुढ़ कर रह गया। उसने सोचा 'कितना फर्क है सोना और माया में।' इधर चॉल में औरों को भी सोना का व्यवहार खटकने लगा था। छोटे बच्चों को छोटी गलती पर भी जब–तब बुरी तरह डांट देना, बड़ी उम्र के मर्दों के सामने भी उसका इज्ज़त से पेश न आना, लंबी–लंबी छोड़ना, खुद के खर्चे को दूसरों के सामने जानबूझकर दिखाना और जताना औरतों को बिल्कुल न भाता। वे आपस में बतियातीं, 'एक माया थी और एक ये। बस चाम देख लो काम कुछ नहीं। रमेश को तो ऐसे ये दीमक की तरह चाट जायेगी। पर वो तो इसके चक्कर में आँखों पर पट्टी बाँधे बैठा है।' उनमें से तो कुछ ने मौका देखकर रमेश से माया की बात छेड़कर सोना की उससे तुलना कर डाली। पर रमेश इसका कोई जवाब न देता।

इस बीच घटी एक घटना ने रमेश की जिंदगी में नया भूचाल ला दिया। अभी उसकी दूसरी शादी हुये चार महीना ही हुआ था। सोना की बहन रूपा गर्भावस्था के अंतिम दिनों में सुरक्षित प्रसव की उम्मीद से पति के साथ गाँव गयी थी। ऐसा करने के लिये सास यानि नन्हे की माँ का बहुत दबाव था। वह कहती कि, 'हमारे घर के सभी बच्चे यहीं गाँव में पैदा हुए हैं।.. मैं अच्छे से देख रेख करूँगी। मैंने चार बच्चे जने हैं। वो तो भगवान की मर्जी नहीं थी। बड़े होकर तीन उनके प्यारे हो गये।...पर अपने नन्हे की औलाद अपनी आँखों के सामने जनवाऊंगी।' हुआ भी सब ठीक– ठाक। रूपा ने स्वस्थ लड़के को जन्म दिया। प्रसव के बीस–पचीस दिन बाद वह पति और बेटे के साथ शहर आने के लिए रेलवे स्टेशन पहुँची। पर ट्रेन पकड़ने के लिए वे रेल की पटरी को पार कर ही रहे थे कि तभी ट्रेन आ गयी। पति नन्हे तो दौड़कर उस पार हो गया पर गोद में बच्चा लिये रूपा उसकी चपेट में आ गयी। न जाने कैसे बच्चा हाथ से छूटा और पटरी की दूसरी ओर जा गिरा। चमत्कार ही था कि तौलिये में लिपटे बालक को खरोंच तक न आई। पर रूपा संसार से विदा हो गयी। गाँव से लेकर शहर तक कोहराम मच गया। सोना भी माँ को लिये नन्हे के गाँव उसके घर दुख में शामिल होने पहुँची। आखिर बहन और जीजा से ज्यादा करीबी रिश्ता क्या होगा? रमेश तो न गया पर उसने सोना को जाने से रोका नहीं।

सोना लगभग एक महीने नन्हे के घर ही रही जब तक कि रूपा की मृत्यु उपरांत के सारे क्रियाकर्म पूरे न हो गये। रूपा का बच्चा मौसी सोना को ही माँ समझ उससे चिपका रहता। सोना भी उस पर पूरी ममता दिखाते हुये बोतल से दूध पिलाती, मालिश करती, नहलाती– धुलाती, खेलाती और सुलाती। जो देखता वही कहता कि 'इस नन्ही जान को तुमने बहुत अच्छे से संभाला है, भगवान तुम्हारा भला करेगा।' तन्हा नन्हे यह देखकर कुछ सकून पाता कि चलो बिन माँ के बच्चे को कोई तो संभाल सकता है। न जाने कब, क्यों और कैसे सोना उसे भाने लगी। एक दिन चढ़ते अंधेरे में मौका पाकर उसने सोना का हाथ पकड़ लिया।

'सोना न जाने क्यों तुममें मुझे रूपा दिखाई देती है। मेरा मुन्ना भी तो तुम्हें माँ की तरह ही देखता है।३.मैं रमेश से कम तो नहीं कमाता। तुम्हें बहुत खुश रखूँगा। वो नपुसंक रमेश...जो पहली से न बच्चा जन सका वो जरूरी नहीं कि तुमसे...।' नन्हे बोले जा रहा था। सोना ने जाने क्यों न तो उसकी बातों का विरोध किया और न ही उसे बोलने से रोका। किसी के आने की आहट भांप वो हाथ छुडाकर अंदर चली गई। मुन्ने के साथ बिस्तर पर रात भर नन्हे की बातें उसके कानों में गूंजती रहीं।

रमेश फोन पर सोना को वापस आने के लिये दबाव बढ़ा रहा था। आखिर सब काम भी खत्म हो चुका था। अब और रुकने का न तो कोई तुक था न ही कोई बहाना। सोना की माँ ने समधी– समधन से वापस जाने की अनुमति माँगी। नन्हे की माँ फफक पड़ी। बोली 'हाय हमारे मुन्ना का अब क्या होगा? कौन संभालेगा उसे? इस उम्र में मुझ बूढ़ी से तो बच्चा न पाला जायेगा। ये तो सोना के हिये भी बहुत लग गया है। हे राम इसका क्या होगा?' बात तो सही ही थी। पर तभी सोना बोल पड़ी

'चाची चिंता न करो। हम मुन्ने को साथ ले जायेंगे। मैं कौन सा बाल–बच्चों वाली हूँ। इसकी देखभाल कर लूंगी। फिर हमारे कमरे तो पास पास हैं। सुबह शाम जीजा जी के पास चला जाएगा तो बाप का प्यार भी पा जायेगा।' बात सभी को जमी, खासकर नन्हे को। इसमें वो अपने बेटे और अपना दोनों का भला देख रहा था। दो दिन बाद नन्हे अपने मुन्ने, सोना और सास के साथ शहर आ गया।

शहर लौटकर सोना दिनभर मुन्ने के साथ लगी रहती। उसे मुन्ने का ध्यान रखने के आगे रमेश या उसके जरूरतों का ध्यान न रहता। रमेश कुछ दिन में ही इस सब से परेशान हो गया। खासकर मुन्ने को देखने, उसे प्यार करने, हाल चाल पूछने के बहाने दिन में कई बार नन्हे का कमरे तक आना– जाना उसे कतई न सुहाता। वह तब और सुलग जाता जब सोना मुन्ने को लेकर नन्हे के कमरे में जाती। जितनी देर उसके कमरे में रहती वह तड़पता रहता। सोना का नन्हे से इस तरह मिलना, मुन्ने के साथ उसके कमरे में आना–जाना और रुकना धीरे–धीरे चॉल की औरतों और मर्दों की नजर में आने लगा।

माया से सहानुभूति रखने वाली एक औरत ने तो एक दिन रमेश को सुखाने के लिये रस्सी पर कपड़े डालते हुये देख इशारे–इशारे में कह ही दिया, 'क्या रमेश आजकल तो सब्जी बेचने के साथ–साथ घर के काम भी करने पड़ रहे हैं न। अब सोना को भी तो मुन्ने और नन्हे दोनों का ख्याल रखना होता है। तुम्हें समय न दे पाती होगी।...मैं कह रही थी कि... माया को ही लिवा लाते।' अंतिम पंक्ति तो शायद रमेश को सुनाई ही न दी। बस कान में यही गूंजता रहा कि 'अब सोना को मुन्ने और नन्हे दोनों का ख्याल रखना पड़ता है।' वह अंदर ही अंदर जैसे गलने लगा। वह सोना से स्पष्ट बात कर लेना चाहता था और कह देना चाहता था कि 'तुम पूरी तरह मेरी हो। नन्हे नाम की बला को मैं नहीं झेल सकता।' पर वह ये बात कहे कैसे ? उस समय कुछ न कहकर रेहड़ी लिये वह सब्जी बेचने निकल गया।

शाम लौटा तो कमरे पर सोना नहीं थी। उसने तुरंत नन्हे के कमरे की तरफ देखा। सोना मुन्ने को लिये नन्हे के कमरे से निकलते हुए दिखी। पास आकर सोना बोली 'आज इसके पापा काम पर नहीं गये तो उन्हीं के पास दो घंटे से खेल रहा था। अब लेकर आई हूँ।...' सोना की बात पता नहीं पूरी हुई थी कि नहीं पर रमेश की आँखें लाल हो चुकी थीं। वह इतना सुनकर ही तमतमाने लगा था। बोला 'अपने बाप के पास था किसी गैर के पास नहीं। तुम इन बाप–बेटे के चक्कर में ज्यादा मत रहो। अपना घर देखो..मैंने तुमसे शादी नन्हे का घर संभालने के लिये नहीं अपना घर संवारने के लिए की है।' अनायास ही रमेश की मुँह से ऐसी जली–कटी सुन सोना को भी गुस्सा आ गया। उससे आज तक किसी ने ऐसे बात नहीं की थी। तमक कर बोली, 'जो कहना है साफ़–साफ़ बोलो। इस नन्हीं जान को इन सबमें मत लपेटो। एक बच्चे के लिये ही तुमने भी मुझसे शादी की है। बच्चे से जलन...छी। खुद तो पैदा कर नहीं सके और दूसरों से जलन..।' इस बात ने तो रमेश के बदन में आग लगा दी। पुरुषत्व पर हुए इस हमले से वह खुद को संभाल न पाया। उसने सोना के गाल पर थप्पड़ जड़ दिया। सोना भी कहाँ कम पड़ने वाली थी। उसने जोर–जोर से रोते हुए अपनी माँ और नन्हे को आवाज लगाई ' अरे अम्मा.. अरे जीजा.. बचाओ इस पापी से मुझे... इसने मुझे थप्पड़ मारा। अब मैं इसके साथ न रहूँगी।' नन्हे और सोना की माँ फटाफट अपने कमरों से भागते हुए बिजली की तेजी से वहाँ पहुँच गये। सोना को संभालते हुए तफ़्तीश करने लगे। रमेश को लगा कि उससे गलती हो गई है। इसलिए वहाँ से हटने में ही उसने भलाई समझी।

वह चलते हुए बाजार की ओर निकल आया। धीरे–धीरे उसका गुस्सा खत्म होता गया और खुद को कोसने लगा ..."मैंने बिना किसी बात के उस पर शक किया।...ये भी तो हो सकता है कि ऐसा कुछ हो ही न जैसा मैं सोच रहा हूँ। किसी औरत के चरित्र पर सवाल उठाऊँगा तो पलटकर वो कुछ तो कहेगी ही...पर उसने भी मुझे कितनी बड़ी बात कही।...ऐसे कोई कहता है।' खैर रमेश ने बात खत्म करने के इरादे से सोना की मनपसंद बर्फी खरीदी और चॉल की ओर चल पड़ा।

कमरे में घुसा तो कमरा कुछ अस्त–व्यस्त लगा। जैसे किसी ने जानबूझकर सामान पलटा हो। कमरे के अंदर–बाहर देखा सोना दिखाई नहीं दी। उसने उसका नाम लेकर पुकारा। सोना तो नहीं आई पर उसकी माँ जरूर कमरे के सामने आकर बोली। 'अरे नासेपिटे, सोना को क्यों बुलाता है? मुझसे बात कर। तेरी माँ के कहने में आकर अपनी फूल जैसी बच्ची तुझे दी थी कि तेरी पौध बढ़ जाये...पर तू

निपूता ही रहेगा। मेरी लाडो पर हाथ उठाता है। अब रह ऐसे ही।'

अब तक नन्हे भी वहाँ आ चुका था। वह भी गुर्राते हूये बोला, 'रमेश तूने आज बड़ा गलत काम किया। अगर सोना तेरी शिकायत कर दे तो जेल भी जायेगा। आजकल सारे कानून जनानियों के पक्ष में हैं। ...अब सोना तेरे पास न रहेगी भाई। हमने मिलकर फैसला कर लिया है। वह मेरे साथ रहेगी, मेरे मुन्ने की माँ बनकर।' अब तक चुपचाप सब सुन रहा रमेश ये सुनकर बिफर पड़ा, 'ऐसे कैसे तेरे साथ रहेगी? शादी हुई है मेरे साथ। कोई तमाशा थोड़ी चल रहा है।'

नन्हे तुरंत बोला, 'शादी तो तेरी माया के साथ भी हुई है भाया और मैंने सब पता कर लिया है वकील बाबू से.. एक हिन्दू पत्नी के रहते दूसरी शादी न कर सकता। गैरकानूनी है ये। तुझपे तो कई केस बनेंगे, क्या समझा ?' रमेश समझ गया कि नन्हे न केवल पूरी तरह से उलझने को तैयार है बल्कि उसने सोना और उसकी माँ को भी अपनी तरफ कर लिया है। पर अब वह करे क्या उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। हतप्रभ सा कमरे के अंदर आ गया। उसने ध्यान से देखा तो पाया कि सोना के कपड़े और सामान सब नहीं थे। जब उसने खुले पड़े बक्से को ध्यान से उलट–पलट कर देखा तो उसके जोड़े हुए तीस हजार रुपये, माया के सभी गहने आदि भी गायब थे। वह नन्हे के कमरे के बाहर आकर बोला,'सोना ये सामान, गहने, मेरे सारे पैसे..ये सब क्यों...?' सोना के साथ नन्हे बाहर आकर धमकाते हुए बोला, ' कैसे पैसे, कैसे गहने ? यहाँ से गया या नहीं..ये तो सोना के ही थे.. या बुलाऊं पुलिस को..अब तुझपे दहेज और मारपीट का केस भी करूँगा।' फिर थोड़ा ठंडे स्वर में बोला, 'देख भाई तू अपनी जिंदगी में शांति से रह। अपनी जनानी को बुला ले गाँव से।' सोना का हाथ अपने हाथ में लेकर उसने रमेश को जैसे अंतिम चेतावनी दी, 'भाई सोना अब मेरे साथ रहेगी मेरी लुगाई बनकर और मेरे मुन्ने की माँ बनकर। मेरे खुशहाल परिवार में दखल न दे। तू भी माया के साथ खुशी–खुशी रह।..हाँ तेरी खुशी के लिये मैं कुछ दिन में ही यहाँ से कहीं और किराये पर चला जाऊंगा। इससे ज्यादा कुछ नहीं कर सकता मैं। पुलिस, थाना, कचहरी करनी है तो बता...पर फंसेगा तू ही बताये देता हूँ।' रमेश बिल्कुल ठगा हुआ सा मुंह लटकाये वहाँ से चला आया।

चॉल में यह बात सबको पता चल ही चुकी थी। पर किसी के घरेलू मामले में कौन सर घुसाये, यही सोच सब चुप थे। हालांकि सभी को रमेश से सहानुभूति थी। जैसा कि अक्सर ऐसे मामले में आगे बढ़कर दखल देने का साहस शुरू में औरतें ही दिखाती हैं, इस मामले में भी उन औरतों ने ही जो मासूम माया के साथ हुए व्यवहार को अन्याय मानती थीं आगे आकर रमेश को समझाया। माया की सहेली रेखा बोली, ' रमेश ये सब माया की आह का असर है। जो कुछ हुआ वो सबक है तुम्हारे लिये। अभी भी देर नहीं हुई है। पिछले छः महीने तुमने माया की कोई खोज खबर भी न ली। पर तुम उसे लेने जाओगे तो जरूर आयेगी। इस बेमेल ब्याह का यही हश्र होना था। सोना में माया जैसी समझ नहीं है।' अधेड़ उम्र की कांता भी समझाते हुए बोली,' तेरी माँ वैसे भी उसे कोई इज्जत से न रखती होगी। वो तो उससे न जाने क्यों इतना खार खाती है। दुनिया में सबके पास बच्चे नहीं हैं तो क्या वे जीना छोड़ दें। कई लोगों के तो बच्चे उन्हें बुढ़ापे में बेसहारा छोड़ देते हैं।...और रमेश बच्चे न होने की सजा एक औरत को ही क्यों मिलती है? आखिर बच्चे होंगे कि नहीं..होंगे भी तो लड़का होगा कि लड़की.. ये जानना या करना अगर आदमी के बस में नहीं है तो औरत के बस में भी कहाँ है?..पर इंसान के बस में खुश रहना तो है.. लेकिन वो खुश रहना चाहे तो..दुनिया में लाखों अनाथ बच्चे हैं जिन्हें माँ बाप के प्यार की जरूरत है। उनमें से किसी की जिंदगी तू भी तो संवार सकता है।'

यह सब सुनते हुए रमेश की आँखें डबडबा आईं। वह सर झुकाये हुये बोला 'सही कहती हो कांता भाभी। मुझे मेरे किये का सबक मिला है। मैं कल ही गाँव जाकर माया से माफी माँगूगा। उसे अपने साथ लेकर यहाँ आऊँगा। हम फिर अपनी दुनिया बसायेंगे...पर भाभी क्या वो मुझे माफ कर देगी? क्या वो पिछली बातें भुला पायेगी?' कांता ने रमेश के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'तू कोशिश तो कर। जहाँ तक मैं माया को जानती हूँ वो जरूर तुझे माफ कर देगी। वह वहाँ आखिर तेरी खुशी के लिए ही तो दुख झेल रही है। औरत का दिल बहुत बड़ा होता है। पर ध्यान रखियो..जिंदगी में दुबारा ये गलती मत करियो। माफी हर बार नहीं मिलती।'

रमेश की आँखों में उम्मीद की चमक साफ दिख रही थी। वह अगले दिन ही माया को लेने गाँव चला गया। इधर नन्हे परिवार समेत कुछ ही दिन में बिना किसी को अपना नया पता बताये चाल से निकल कहीं और रहने के लिये चला गया। इस बात से सब खुश भी थे। चाल अपनी पुरानी रंगत में आ चुका था। नीम पर छाई हरियाली भी देखते ही बनती थी।

वर्तमान निवास स्थान– मकान नंबर 280, ग्राउंड फ्लोर, पॉकेट 9, सेक्टर 21, रोहिणी, दिल्ली 110086

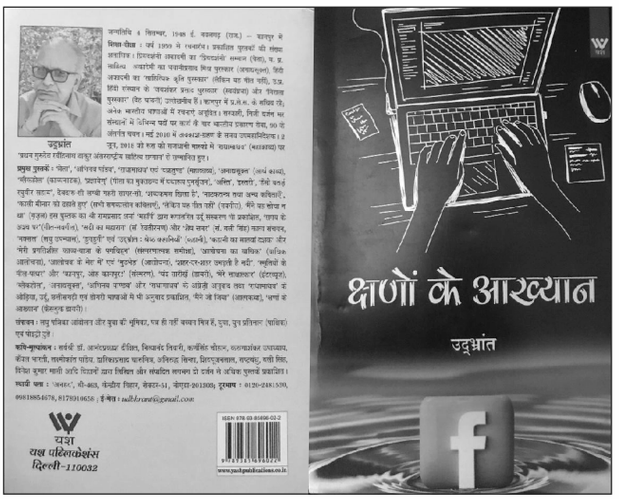

'क्षणों के आख्यान'

फेसबुक डायरी
लेखक –श्री उद्भ्रांत
पृष्ठ – 444
मूल्य–रु 550/–
प्रकाशक – यश पब्लिकेशंस, दिल्ली।

इस दौर में सोशल मीडिया के सर्वाधिक लोकप्रिय फेसबुक मंच पर जहां एक ओर अनाड़ी, अभद्र, असज्जनों की तूती बोलती है, यहीं दूसरी ओर कवि–लेखकों, कलाकारों, विद्वानों–विचारकों के कविता–गीत, पेंटिग्स, सुलझे मंतव्य, काँधती टिप्पणियां, गम्भीर लेख–आलेख पोस्ट होते रहते हैं। समय के इसी नाजुक मोड़ पर प्रख्यात साहित्यकार उद्भ्रांत जी का 'क्षणों के आख्यान (फेसबुक डायरी) हमारे सामने है। इस किताब में लगभग छह–सात सालों के दौरान की उनकी न केवल साहित्यिक बल्कि तात्कालिक रूप से देशकाल के समक्ष उपस्थित विभिन्न सवालों, विषयों पर मार्मिक, प्रेरक और उत्तेजक टिप्पणिया संगृहीत हैं। कहना न होगा कि यह किताब क्षणों में प्रवाहित समय का मुकम्मल दस्तावेज भी है, इतिहास का कच्चा चिट्ठा भी।

इस किताब में संगृहीत उद्धांत जी की टिप्पणियां और टीपें विषय–व्यंजक भी हैं और व्यक्ति–व्यंजक भी। ये उनके अन्तर्वाह्य व्यक्तित्व को दोनों तरफ से समझने में सहायक भी हैं। उनके विराट साहित्यकार आकार के समक्ष उनकी ये टिप्पणियां अपनी लघुता में महिमान्वित होकर ही आकर्षक बन पड़ी है और विधागत अनुशासन से स्वच्छंद होने के कारण निरंकुश और मारक भी हो उठी हैं। आज के समय के निर्मात रूप से सबसे बड़े कवि उद्भ्रांत जी इन टीपॉ–टिप्पणियों में देश के सामाजिक और राजनीतिक पतनों, ढोंगों, ढकोसलों और झूठों पर प्रश्नाकुल होकर जिस तरह जगह–जगह मर्माहत होकर बिफर पड़े हैं, आलोचक की मुद्रा में बाग्खड्ग–हस्त होकर टूट पड़े हैं, वह उनके साहसिक और निर्भीक कृती व्यक्तित्व का सबूत है। उनका अपना मोर्चा चूंकि हिन्दी भाषा साहित्य है, अतः लाजिम है कि उस मोर्चे पर उन्होंने निगाह में आये किसी क्षद्म, किसी कोताही को बख्शा नहीं है। चाटुकारिता और जोड़तोड़ से पुरस्कार वरण–ग्रहण वृत्ति पर उन्होंने अपनी जवान परशुराम के परशु की तरह चलाई है। जिस तरह कुछ कवि–लेखकों, आलोचकों के प्रति उनके मन में प्रेम श्रद्धा का भाव अडिंग है, उसी तरह कुछ के प्रति वह विचलित भी है। उनकी दृष्टि इतनी साफ और बेबाक है कि वह अपना सानी आप है।

यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि साहित्य की लगभग सारी विधाओं में शताधिक किताबें लिख चुके उद्भ्रांत जी का रचनात्मक योगदान इतना बड़ा है कि उसके समक्ष जब आकार, सार और प्रतिभा में अवर कोटि के कवि–लेखक उनसे आगे ले जाये जाकर राष्ट्रीय स्तर के सरकारी, गैरसरकारी पुरस्कारों से नवाजे जाते हैं तो एक दर्द से घुला सात्विक क्रोधावेश उनमें

उभरता है जिसे जल्द ही वह, त्याग और निष्काम साहित्य सेवा के ऊंचे तकाजों से ढँककर, उसके विष की दाहकता नीलकंठ शिव की तरह पी जाते हैं। इस तरह वह आज समकालीन हिन्दी साहित्यकारों के बीच सबसे बड़े विषपायी हैं। वह कई विरोधाभासों को एक साथ जीते हैं। इसके बावजूद उनके साहित्यिक जीवन में सामंजस्य बना रहता है। जैसे उन्होंने सामयिक साहित्यिक प्रवृत्तियों को परे ठेलकर महाकाव्य लिखना ठाना प्रबंधकाव्य, निबंधकाव्य लिखना ठाना। किन्तु महाकवि कहलाने से गुरेज किया। गीत, नवगीत और गजल के सिद्ध कवि होते हुए भी उसे ज्यादा महत्त्व न देकर छंद, मुक्तछंद कविताओं से आगे बढ़ते हुए छंदमुक्त गद्य कविता की लीक को उन्होंने महाकाव्य के शिखर तक पहुंचा दिया। विचार कविता के भी वह सबसे बड़े कवि होकर निकले हैं। वह कथाकार, जीवनीकार, काव्य–नाटककार, संस्मरण लेखक और सम्पादक भी हैं। सवाल यह है कि वह क्या नहीं हैं।

इस किताब की टीपों–टिप्पणियों और वृत्तांतों में उनके साहित्यिक आत्मसंघर्ष की रोमांचक गाथा भी कहीं रंगीन कहीं उदास स्वर में गूंजती है। उद्भांत जी के सच्चे मानववादी प्रगतिशील, धर्मनिरपेक्ष व अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के हामी, उदार

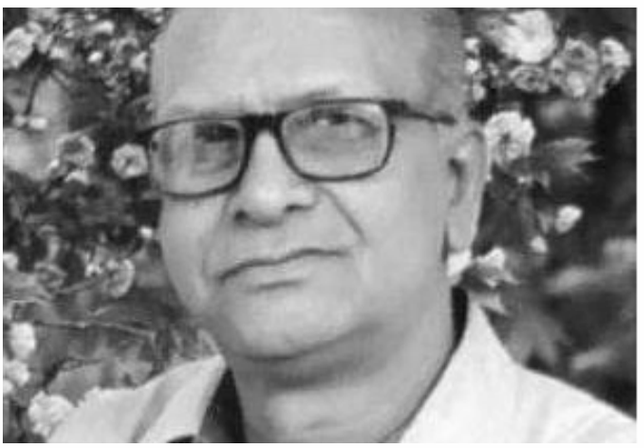

समाजवादी चरित्र का पता भी इन टीपों में पग–पग पर मिलता है। इस किताब में उन्होंने दूसरे लेखकों के छोटे–बड़े आलेखों को भी यथावत रखा है। कुछ आलेखों में उनके ऊपर ही विद्वानों की आलोचना है। यह कहना पड़ता है कि उद्भ्रांत जी आज के समय में सर्वाधिक आलोचित, विवेचित और मूल्यांकित कवि–साहित्यकार हैं। उनकी किताबें भी सर्वाधिक बिकती हैं। आशा है यह किताब भी पहले की किताबों की तरह पाठकों द्वारा हाथोंहाथ ली जाएगी और लोकप्रियता की दृष्टि से भाग्यशाली ठहरेगी। आवश्यक न होने पर भी यह कहना असंगत न होगा कि विविध विधाओं में अपार साहित्य रचते हुए भी उद्भांत जी का सर्वोपरि रूप कवि का है, उस कवि का जिसमें महाकवित्व प्रतिफलित हुआ है। इतना बड़ा कवि जब आभासी मंच पर टीपों–टिप्पणियों में अपने चिन्तन की प्रभा बिखेरता है और विचार–मंथन कर रत्न काढ़कर लोकसंग्रह भाव से सामने रखता। है तो समाज तो लाभान्वित होता ही है, मंच का गौरव भी बढ़ता है। यह किताब इस नजरिए से भी महत्वपूर्ण है कि किसी कवि की फेसबुक डायरी का शायद यह पहला प्रकाशन है।

उषा रानी की कविताएं

यह मन बावरा ही तो है.....

कभी कुछ पा लिया तो नाच उठा , कुछ खो दिया तो उदास हो चला , कभी तितलियों ने इसे नचाया , तो कभी फूलों ने इसे सजाया , कभी यह आसमां की ओर उड़ चला , तो कभी धरा पर मोहित हो गया , कभी भटकता तो कभी किसी दिशा को तलाशता । जाने कहाँ–कहाँ और किधर–किधर यह मीलों सफर तय करता रहा.....

मन के इस सफर को थोड़े शब्दों में मैंने पन्नों पर सजाने की कोशिश की तो शब्द बिखरने लगे । अनायास ही मेरे मुख से निकल पड़ा.....

मैं क्या लिखूँ .....

मैं क्या लिखूँ...?
किसकी आवाज लिखूँ ,
जमाने की आवाज लिखूँ ,
या स्वयं पर कोई किताब लिखूँ ।

जीवन की कैसी गुजरी है रात ,
उन रातों का राज लिखूँ ,
या दर्द का उन्माद लिखूँ ।

जब खुशियों ने तोडा था दम ,
तब दौड पडा वक्त का हर गम ,
उन खामोश लम्हों का संवाद लिखूँ ,
या वीरांगी की कराह लिखूँ ।

हर दिन की हार लिखूँ ,
या जीवन की आस लिखूँ ,
सन्न रह जाओगे तुम ,
गर मैं जीवन की बात लिखूँ ।

जीवन भर के तड़प को ,
मैं क्या नाम दूँ ,
निःशब्द अंधेरी रात लिखूँ ,
या सिर्फ आखिरी साँझ लिखूँ ।

जीवन की कविता

तुम आगे बढ़ते गए ,
छोड़ कर पीछे मुझे ,
सामर्थ्य नहीं था मुझे ,
फिर भी संग–संग चलते गए ।

जुनून बढ़ता गया ,
दो शब्द तुमसे सीखा ,
और पन्नों पर जीवन की ,
कविता लिख दिया ।

संग तेरे चलते हुए ,
सुना था भँवरों का गुंजन ,
भरी दोपहर में धूप की थिरकन ,
और तितलियों का चितवन ,
मन उड़ चला जब भीतर की ओर ,
तब शाम को चिड़ियों को ,
घर लौटते देखा ,
रात में मन का कोई तार हिला ,
और पन्नों पर जीवन की ,
कविता लिख दिया ।

तुम्हारा आगे बढ़ना ,
मेरा पीछे की हर मोड़ को देखना ,
तुम्हारा आकाश की ओर उड़ना ,
मेरा जमीं को हीं देखते रह जाना ,
फिर भी तेरे संग–संग चलते जाना ,
उम्मीद ने साथ ना छोड़ा ,
और फिर से लिख दिया ,
पन्नों पर जीवन की कविता ।

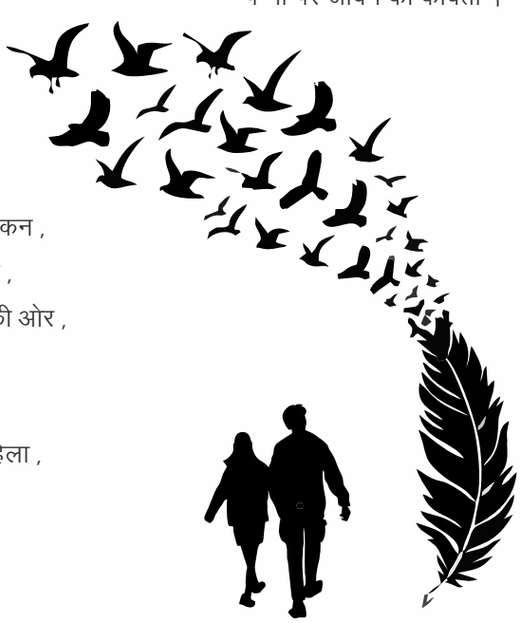

चींटीपुरम
के भूरेलाल

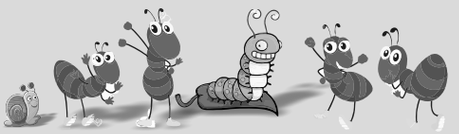

मुद्राराक्षस द्वारा रचित धारावाहिक
का छठा व अंतिम भाग

आफतसिंह की आफत

भूरेलाल अब बिल्कुल हार गए थे। दूर से लड़ाई की आवाजें सुनाई दे रही थीं। शायद समय से पहले ही आफतसिंह की फौज ने हमला कर दिया था।

लड़ाई की आवाजें सुनकर भूरेलाल की और ज्यादा जान सूखने लगी। उन्होंने इधर–उधर देखा। लेकिन अब भागने का मौका बिल्कुल नहीं था। चींटियों का एक दल किनारे खड़ा ड्रम और बिगुल बजाए जा रहा था और रानी दंतवती के सिपाही कतार बनाकर चल रहे थे–लेफ्ट–राइट–लेफ्ट।

भूरेलाल के पांव कांप रहे थे और उनकी हथेलियों में पसीना आ रहा था। उन्होंने आंखें बन्द कर रखी थीं जिसकी वजह से बार–बार लड़खड़ा जाते थे। उन्हें लग रहा था जैसे उन्हें फांसी चढ़ाने ले जाया जा रहा हो।

बिल से बाहर आते ही उनका दिल धक् से रह गया। वे सोच रहे थे कि बाहर आकर वे लड़ाई के मैदान तक पहुंचते–पहुंचते कोई न कोई तरीका बचने का निकाल लेंगे और जान बच जाएगी। लेकिन अभी उन्होंने अपने किले के फाटक के बाहर पांव निकाला ही था कि एक जोरदार आवाज सुनाई दी '' जै आफत सिंह !'' और उनके साथ चल रहे एक सिपाही की खोपड़ी अलग जा पड़ी। आफतसिंह के एक सिपाही ने ऐसी जोर की तलवार घुमाई कि वह बीच में कहीं रूकी ही नहीं।

घबराहट के मारे कांपते हुए भूरेलाल ने जो आंख खोली तो देखा उनके साथी की खोपड़ी खींस निकाले उनके पैरों के पास पड़ी है और बिना खोपडी का उनका साथी भागा जा रहा है।

भूरेलाल ने उसकी खोपड़ी कटते नहीं देखी थी। उन्हें यह भी नहीं पता था (क्योंकि वे आंखें बन्द किए हुए थे) कि उनके साथी की गर्दन आफतसिंह के एक सिपाही ने काटी थी। उधर आफतसिंह के एक सिपाही ने जब देखा कि रानी दंतवती का एक सिपाही सिर कटने के बाद भी चल रहा है तो वह घबरा गया। उसे लगा, जरूर यह कोई भूत होगा।

आफतसिंह के सिपाही ने पहले तो उसे ललकारने की कोशिश की, ''क्यों बे, मुझे डराना चाहता है ? तलवार भोंक दूंगा !''

लेकिन दंतवती का सिपाही बिना सिर का था, सुनता क्या। लिहाजा बस आगे बढ़ता ही रहा।

आफतसिंह का सिपाही इस बार घबरा गया। अपनी तलवार फेंककर एकदम पीछे भाग लिया। इसी वक्त भूरेलाल ने आंख

दंतवती के एक मरे हुए सिपाही के पास एक दूसरे सिपाही को खड़ा देखकर आफतसिंह का एक सिपाही भाला लेकर झपटा, ''जै आफतसिंह !''

''भैया आफतसिंह तो तुम भी लग रहे हो।'' भूरेलाल घिघियाए। मगर वह सिपाही भाला लिये झपटा ही चला आ रहा था। अब जान की खैर नहीं–भूरेलाल ने सोचा। वे जल्दी–जल्दी हनुमान चालीसा पढ़ने लगे। आंखें मीचकर मौत का इन्तजार करने लगे।

आफतसिंह का सिपाही चकरा गया। नजदीक आने पर उसने देखा जिस सिपाही को वह मारने आ रहा था उसके दो सिर थे। दो सिर वाला सिपाही ?–वह भाला चलाना रोक कर भूरेलाल को फटी आंखों से घूरने लगा। उसने सोचा अभी उसका एक साथी चिल्लाता भागा था, ''दंतवती की फौज में बिना सिर वाले भूत लड़ रहे है !''

उसकी आंखों के सामने अब यह दो सिर वाला सिपाही खड़ा था। अब तक आफतसिंह के उस सिपाही के पीछे और भी कई सिपाही आ खड़े हुए थे। उसके ठीक पीछे खडा दूसरा सिपाही बोला, ''दादा, इसको घूर क्या रहे हैं ! मारिए बरछा और काम तमाम करिए !''

''अबे नहीं बे खजानसिंह, देख नहीं रहा है इसके दो सिर हैं !'' पहला बोला।

''ऐं दो सिर ?'' और पीछे खड़ा तीसरा सिपाही आगे आ गया और ध्यान से भूरेलाल को देखा तो खिलखिला कर हंसने लगा।

खजानसिंह को गुस्सा आ गया, ''अबे हंसता क्यों हैं ?''

तीसरा हंसता हुआ बोला, ''ही–ही, मजेदार बात है न। यह छोटा होगा तो इसे दूध मां किस मुंह से पिलाती होगी ?''

''अबे तुझे मजाक सूझ रहा है ?'' खजानसिंह गुस्से से खीझता हुआ बोला, ''तुझे पता भी है यह कौन है ?''

''ऐं ? कौन है ?'' तीसरे ने हंसना रोककर पूछा।

''चींटीं भी कोई दो सिर वाली होती है !'' पहले ने कहा।

''फिर ?'' तीसरे ने मुंह फाड़कर पूछा।

''फिर क्या, यह भी कोई न कोई भूत होगा।''

''ऐं भ....भ....भ...!''

तीसरे की बोली उसके गले में ही फंस गई और वह बेहोश हो गया। बाकी दोनों सिपाहियों ने उसे लादा और भाग निकले।

आफतसिंह की फौज में अजीब अफरा–तफरी मचने लगी। उसके सिपाहियों में यह बात बड़ी तेजी से फेली कि दंतवती की सेना में बिना सिरवाले या दो–दो सिर वाले सिपाही लड़ने आए हैं।

आफतसिंह को इस खबर से बेहद गुस्सा आया। उसने सिपाहियों को डांटते हुए कहा, ''मेरी दूरबीन लाओ !''

दूरबीन लाई गई। आफतसिंह ने आंखों पर दूरबीन लगाकर मैदान पर निगाहें दौड़ाई। थोडी देर बाद वह खुद चौंक गया। दूरबीन में भूरेलाल दिखाई दे रहे थे और उनके सिर के पास दूसरा सिर भी था।

पहले तो उसने समझा दूरबीन में कोई खराबी आ गई होगी। लेकिन अपने सिपाही उसे ठीक दिखाई पड़ रहे थे। उसके सिपाही चूंकि अब भूतों से लड़ने से कतरा रहे थे इसलिए हारकर आफतसिंह को अपनी फौज वापस

बुलानी पड़ी। दंतवती की फौज इस अचानक विजय से और जोश में आ गई।

आफतसिंह की फौज के सिपाहियों को काफी दूर तक खदेड़कर दंतवती के सैनिक वापस लौटे। उन्होंने बीच मैदान में अपने मित्र की खोपड़ी लिए आंख बन्द किए बैठे भूरेलाल को देखा तो बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने सोचा भूरेलाल कितना बहादुर है। बीच मैदान में आंख बन्द किए अपने दोस्त की मृत्यु पर शोक प्रकट कर रहा है।

बाकी लोगों ने भी लाइन में खड़े होकर दो मिनट मौन रहकर श्रद्धांजलि दी। लेकिन दो मिनट खत्म होने पर भी भूरेलाल उठे नहीं। तब एक सिपाही ने अपनी तलवार से उनको छुआ।

भूरेलाल जोर से चिल्लाए ''आह !'' और जमी पर चारों खाने चित पड़ गए।

''अरे ये क्या हुआ ?'' लोग चक्कर में आ गए।

भूरेलाल ने समझा इतनी देर से सिपाही भाला लिए निशाना लगा रहा था। वे पूरी तरह से मरने को तैयार हो चुके थे और इन्तजार कर रहे थे कि कब भाला उनकी छाती में घुसे और ''आह'' करके गिरें और मर जाएं।

जैसे ही तलवार उनके बदन से छुई वे समझे भाला आ लगा और वे पीछे जा गिरे।

लोगों ने उन्हें हिलाया डुलाया। उनका नाम लेकर पुकारा। आंखें बन्द किए भूरेलाल के कानों में आवाज पड़ी। यह क्या ? उन्होंने आंखें खोली तो उनकी ही सेना के अनेक सिपाही उनके आसपास खड़े थे। भूरेलाल थोड़ी देर तो उन्हें घूरते रहे फिर रोने लगे। बस्ती में भूरेलाल को देखकर लोग हंस पड़े। बात यह थी कि उनके कंधे पर रखा हुआ उनके दोस्त का सिर बड़ा अजीब लग रहा था। एक मनचले से नहीं रहा गया। उसने टोका, ''भूरेलालजी, यह आपके कंधे पर सिर किसका है ?''

''ऐं, सिर किसका है ? भूरेलाल बहुत गुस्सा हुए, ''तुम्हारे बाप का सिर है ! अब बोलो।'' चूकि भूरेलाल बिल्कुल मज़ाक के मूड में नहीं थे इसलिए उन्होंने उसे दौड़ा लिया। वह भागा। इस भागम–भाग में भूरेलाल के कंधे पर से उनके साथी का सिर गिरा और लुढ़कता हुआ पास के नाले में गायब हो गया।

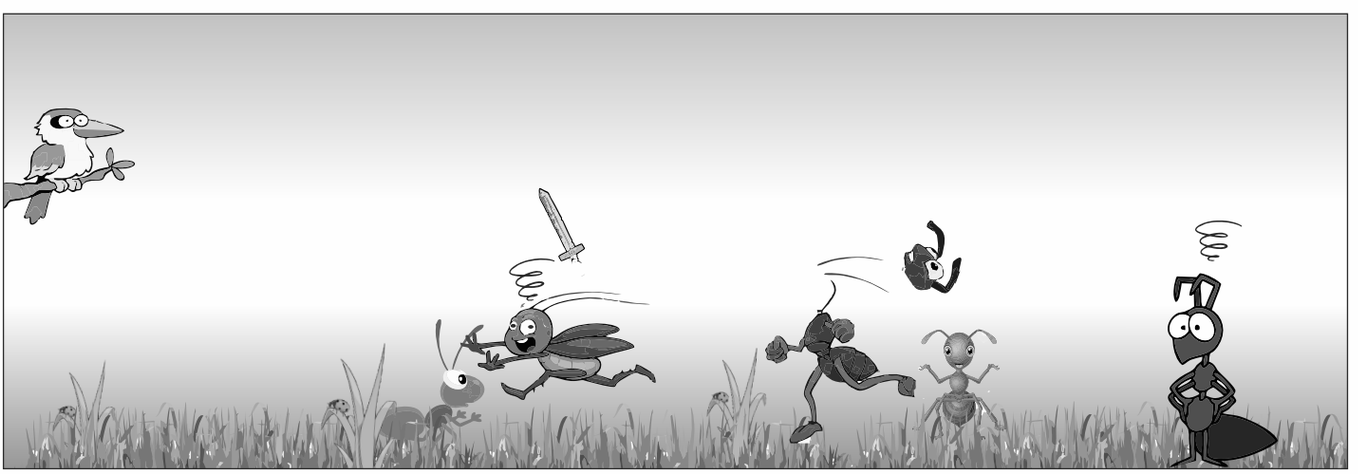

भूरेलाल ने सिर को साफ अपने कंधे से गिरते हुए देखा था। दौड़ते–दौड़ते वे एकदम रूक गए। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या हुआ–खुद उनका सिर ही कैसे नीचे जा गिरा ?

''हे भगवान, मेरा सिर !''

भूरेलाल चिल्लाए और अपना सिर थाम कर बैठ गए।

''भूरेलाल जी क्या हुआ !'' लोगों ने सहानुभूति से पूछा।

''मेरा सिर !'' भूरेलाल दुखी होकर बोले।

''आपका सिर ?''

''जी ! मेरा सिर टूट गया !'' भूरेलाल ने कहा।

लोगों को हंसी तो आई मगर भूरेलाल का खयाल करके उन्हें पुचकारते हुए कहा, ''कोई बात नहीं भूरेलालजी, जाने दीजिए। सिर टूट गया तो टूट गया। दूसरा उगा लीजिएगा।''

'ऐं तुम कैसी बकवास कर रहे हो जी !'' भूरेलाल ने डांटा, ''आखिर वो मेरा सिर था। कोई आलू–प्याज तो था नहीं कि बाजार से दूसरा खरीद लूंगा, और फिर क्या मैं केकड़ा हूं कि जो हिस्सा कट गया वो दुबारा उग आएगा ?''

''मगर भूरेलाल जी इससे एक फायदा हो गया है आपको।'' एक ने समझाने की कोशिश की, ''आपके हजामत के पैसे तो बचा ही करेंगे, टूथपेस्ट के पैसे भी बचेंगे।''

''हाय मैं मर गया !'' यकायक भूरेलाल को कुछ याद आया और वे दहाड़ मारकर रो पड़े–''अरे मैं तो लुट गया ! अरे उसका तो मुझे ध्यान ही नहीं था !''

''अब क्या हो गया भूरेलालजी ? किसका ध्यान आपको आ गया ?'' भूरेलालजी के चारों तरफ इकट्ठा लोगों ने एक साथ पूछा।

''अरे लो, जैसे तुम लोगों को कुछ मालूम ही नही है। हाय, मैं तो लुट गया !'' भूरेलालजी रोते ही जा रहे थे।

''अरे कुछ बताइए भी तो कि क्या हुआ ?''

''और होना क्या था ?'' भूरेलाल बोले, ''अभी परसों ही तो दांतों का नया सैट लगवाया था मैंने।

मेरी खोपड़ी के साथ वो भी गया। हाय मैं लुट गया।!''

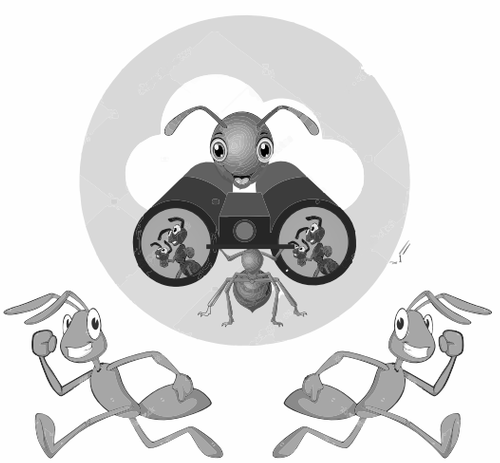

समाप्त

फूल गेंदवा ना मारो, लगत करेजवा में चोट....

रसूलन बाई

––ज्योत्सना

बनारस में साल 1969 के साम्प्रदायिक दंगो में रसूलन बाई का घर जला दिया गया था। एक शानदार सांगीतिक कैरियर के बावजूद उन्हें अपनी ज़िन्दगी के आखिरी दिन आकाशवाणी, बनारस के बगल में अपनी एक चाय की दुकान खोलकर गुजारने पड़े।

भले ही हमारे समाज ने इतिहास में रसूलन बाई जैसी शख्सियतों को वो जगह नहीं दी जिनकी वे हकदार थीं लेकिन कभी भी उनके हुनर और बेजोड़ गायकी को युगों–युगों तक कला प्रेमी नज़रंदाज़ नहीं कर सकते।

फूल गेंदवा ना मारो लागत करेजवा मे चोट हो.....गीत के ये बोल हैं एक ऐसी महान कलाकार के है जिन्हें शास्त्रीय संगीत कला की मल्लिका होने के बावजूद वो सम्मान नहीं मिल पाया जिसकी वो असल मायने में हकदार थीं क्योंकि उस दौर में नाच–गाने से ताल्लुक रखने वाली महिलाओं को समाज अपने से अलग–थलग कर देता था, ये बात और है कि समाज अपनी हर खुशियों की महफिल सजाने के लिए तलाश सिर्फ इन्हीं महिला कलाकारों की करता था। ये कहना भी गलत ना होगा कि बदस्तूर ये प्रथा आज भी अपने नए कलेवर के साथ मजबूती से समाज में अपनी जड़े जमाए हुए है।

सुप्रसिद्ध बनारसी ठुमरी के बोल ''फूल गेंदवा'' गीत के ज़रिए हम बात कर रहे है लोक कला पूर्वी अंग की प्रसिद्ध गायिका रसूलन बाई की। पूर्वी अंग जिसमें कजली, चैती, ठुमरी, टप्पा, होरी और सावनी जैसे लोक गीत समाहित हैं वहीं उत्तर प्रदेश, बिहार और राँची के गाँवों का गवई उल्लास भी शामिल हैं। करीब पचास साठ साल पहले लोक कला समाज में संचार का भी एक प्रमुख साधन थी और महिलाओं के लिए अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम भी। बनारस घराने से संबंधित गायिका रसूलन बाई विशेष रूप में श्रृंगार रस में पूरब अंग की ठुमरी संगीत शैली और टप्पा में सिद्धहस्त थीं। इनका जन्म सन् 1902 एवं मृत्यु 15 दिसम्बर 1974 को हुई। रसूलनबाई का नाम बतौर अग्रणी भारतीय हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीतकारों में शुमार है। 'फूल गेंदवा ना मारो' पूर्वी गीत इस कदर पसंद किया गया कि सुप्रसिद्ध शास्त्रीय संगीत गायक मन्ना डे भी इस गीत के जादुई प्रभाव से खुद को बचा ना सके। 1964 में बनी फिल्म दूज का चांद में इस गीत को मन्ना डे ने अपने स्वर दिए जिसे कला संगीत प्रेमियों द्वारा बहुत ही पसंद किया गया। वहीं सन् 1956 मे फिल्म फंटूश में आशा भोंसले ने भी यह गीत गाया है।

साल 1902 में कछवा बाज़ार, मिर्जापुर ;उत्तर प्रदेश के एक गरीब मुस्लिम परिवार में जन्मी रसूलन को अपनी माँ अदालत बाई के ज़रिए संगीत की शिक्षा विरासत में मिली थी। यही वजह थी की उनकी नन्हीं सी उम्र में ही शास्त्रीय संगीत पर बेहतरीन पकड़ और शहद सी मीठी आवाज़ ने अपना जादू बिखेरना शुरू कर दिया था। पांच साल की छोटी सी उम्र में संगीत के प्रति उनकी गहरी रूचि को देखते हुए उन्हें संगीत की शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिए स्थापित कथक कलाकार एवं ख़याल गायक उस्ताद शमू खान के पास इसके बाद उन्हें सारंगी वादक आशिक खान और उस्ताद नज्जू खां के पास भेजा गया।

धनंजयगढ़ के दरबार में रसूलन बाई की गायकी का पहला आयोजन किया गया था। जिसकी अपार सफलता के बाद उन्होंने स्थानीय राजाओं के निमन्त्रण पर अपनी गायकी के कार्यक्रमों का आयोजन करना शुरू कर दिया। इस तरह वह अगले पांच दशकों तक हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत शैली और बनारस घराने पर अपनी धाक जमाने वाली गायिका बन गयीं। साल 1948 में उन्होंने मुजरा प्रदर्शन करना बंद कर दिया और कोठे से बाहर चली गयीं। इसके बाद उन्होंने

स्थानीय बनारसी साड़ी व्यापारी के साथ शादी कर ली। इसके अलावा वह अक्सर इलाहाबाद एवं लखनऊ में आयोजित होने वाली सांगीतिक गोष्ठियों एवं महफिलों को अपनी ज़ानदार गायिकी से सजाती रहीं। 1972 तक ऑल इंडिया रेडियो और दूरदर्शन के स्टेशन से अपनी कला के माध्यम से जुड़ी रहीं। उनका अंतिम सार्वजनिक गायन कश्मीर में आयोजित किया गया था। साल 1957 में संगीत नाटक अकादमी की तरफ से उन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। प्रसिद्ध शास्त्रीय संगीत गायिका नैना देवी ने भी इन्हीं से संगीत की शिक्षा ग्रहण की।

बनारस में साल 1969 के साम्प्रदायिक दंगो में रसूलन बाई का घर जला दिया गया था। एक शानदार सांगीतिक कैरियर के बावजूद उन्हें अपनी ज़िन्दगी के आखिरी दिन आकाशवाणी, बनारस के बगल में अपनी एक चाय की दुकान खोलकर गुजारने पड़े। 15 दिसंबर 1974 को रसूलन बाई ने 72 वर्ष की उम्र में इस दुनिया को हमेशा के लिए अलविदा कह दिया।

सन् 2009 में सबा दीवान के निर्देशन में बनी शार्ट फिल्म द अदर्स सांग के जरिए रसूलन बाई के जीवन की दास्तां को बखूबी दर्शाया गया है,

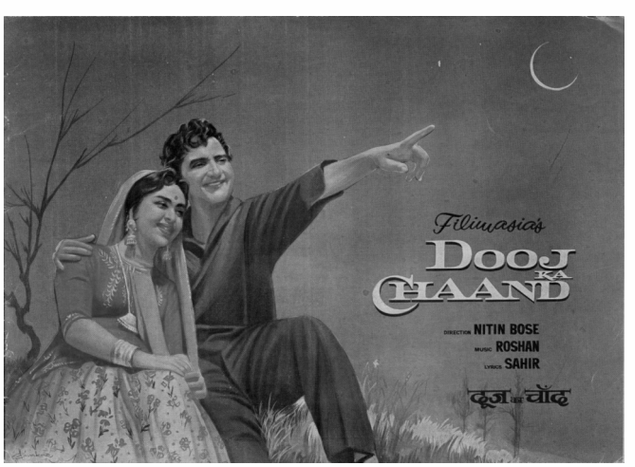

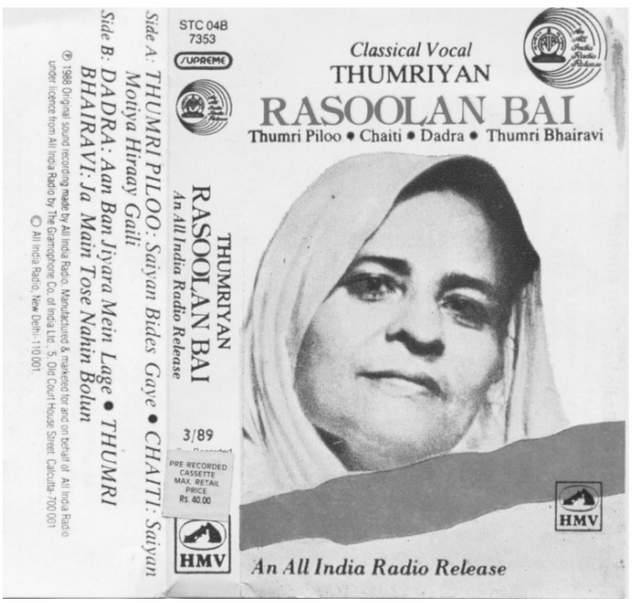

जिसमें उनके रिकार्डेड गीतों के साथ उनकी जिंदगी से जुड़े अनकहे पहलुवों को उजागर किया गया हैं। इस फिल्म के जरिए उत्तर भारत में तवायफ की परंपरा के इतिहास को भी भलीभांति समझा जा सकता है। भले ही हमारे समाज ने इतिहास में रसूलन बाई जैसी शख्सियतों को वो जगह नहीं दी जिनकी वे हकदार थीं लेकिन कभी भी उनके हुनर और बेजोड़ गायकी को युगों–युगों तक कला प्रेमी नज़रंदाज़ नहीं कर सकते। मिर्जा गालिब के लिखे इस गीत के साथ रसूलन बाई जैसी महान संगीतकार को शत्–शत् नमन।

''जिंदगी में तो महफ़िल से उठा लेते थे मुझे, देखूं अब मर गए पर कौन उठाता है मुझे''

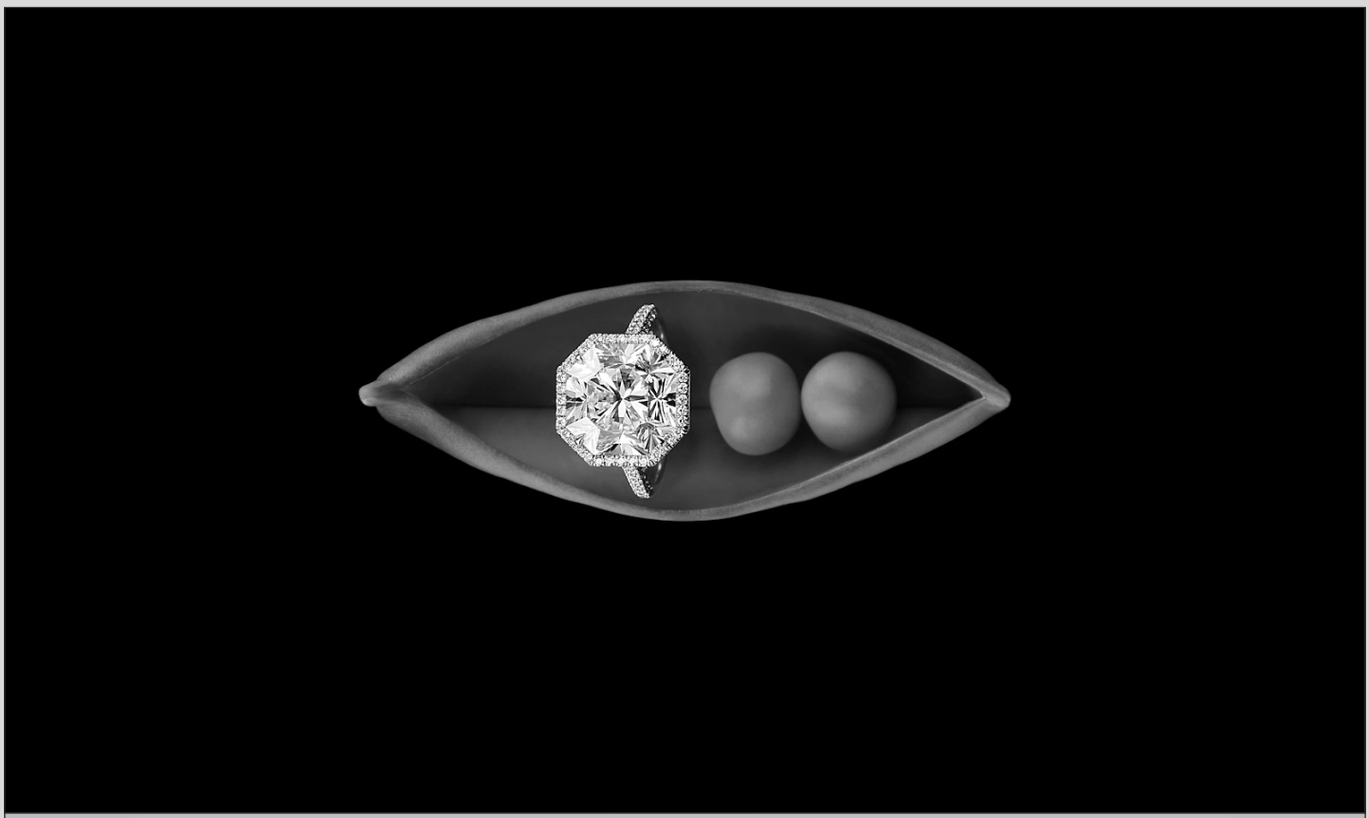

Developing

Print Jobs

that Breath *Life*

Yes ...Excellence in Printing becomes a 'Piece of Art' when it is combined with unmatched creativity...ànd the end product starts breathing. This is the vision on which we have been focusing since last 4 decades.

Every Printing house focuses on quality. But at Jaina Offset Printers, the superb quality is infused with aesthetic value and the out come is an extraordinary marvel.

Jaina Offset Printers

DESIGNER & QUALITY OFFSET PRINTERS

www.jainaoffset.com

CALL : 9810858988, 9811269844